कब्र हमारी मुर्दा आपका

कब्र हमारी मुर्दा आपका

एस० एल० मीणा

दिनमान प्रकाशन
3014 चर्खेवालन, दिल्ली-110006

मूल्य 40 00 रुपए/ संस्करण प्रथम/प्रकाशन वर्ष 1989/प्रकाशक
दिनमान प्रकाशन, 3014, चर्खेवालान, दिल्ली-110006 आवरण
सज्जा जोशी/मुद्रक भोले प्रिंटिंग प्रेस, एक्स-188 गली न० 3
ब्रह्मपुरी, दिल्ली 110053

समर्पण

मेरा अधकचरापन
बर्दाश्त कर सकने की
कूव्वत रखने वाले
कुछ खास दोस्तो
के लिए
क्टमीना
एस० एल० मीणा

विषय सूची

महाविद्यालयो से विलुप्त होती एक प्रजाति

तो हे सखि, समय चक्र घूमते घूमते पुन उसी स्थान पर आ गया है। जुलाई माह आधे से अधिक जा चुका है। चुनाव-यज्ञ मे जिस प्रकार श्वेत वस्त्रधारी राजनेता पृथ्वी पर प्रकट हाते हैं, उसी प्रकार जुलाई मास मे श्वेत श्याम मेघ गगन पर आच्छादित हो गए हैं, और जिस प्रकार राजनेता केवल कहते है करते नही, उसी प्रकार ये मेघ भी गरजते तो हैं किन्तु बरसते नहीं। ऐसे मे ग्रीष्म से तपते नगर-जनो की स्थिति उस कामी पुरुष की सी हो गई है, जिसकी नवविवाहित भार्या एक दो बार पतिगृह मे आकर दीर्घावधि के लिए पितृगह मे चली गई हो।

जुलाई मास मे यू तो अनेक नवीन घटनाएँ घटित होती है किन्तु नगर मे जिस घटना से सर्वाधिक हलचल व्याप्त है, वह है महाविद्यालय का पुन खुल जाना। गत दो माह मे महाविद्यालय उसी प्रकार सूना सूना प्रतीत हो रहा था जैसे महाभारत युद्ध के समाप्त होने के पश्चात कुरुक्षेत्र हो गया था। आओ सखि, राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित नगर के इस महाविद्यालय का तनिक अवलोकन करें, जो दो माह पश्चात् पुन उसी वैभव को प्राप्त करने जा रहा है।

जिस प्रकार भारी वर्षा मे प्रत्येक नाला तीव्र गति से बाँध की ओर भागता है। उसी प्रकार हे सखि, इस जुलाई मास मे प्रत्येक साक्षर-नवयुवक महाविद्यालय की ओर दौडता है। देखो तो सही, कोई पाँवो से चलकर, कोई द्विचक्रवाहन स, कोई स्वचालित वाहन से कोई किस भाति तो कोई किस भाति अपनी अपनी सुविधानुसार यहाँ आ रह हैं।

वह देखा, प्राचाय कक्ष के निकट एक कोमलागी चचल चपल नयना

मे कौतूहल लिए खडी है। यह स्नातकोत्तर कक्षा म प्रवश प्राप्ति हेतु यहाँ आई है। किसी विषय विशेष म इसकी रुचि नही है, कोई सा भी पढ लेगी। वस्तुत अध्ययन मे इसकी कोई रुचि नही है किन्तु जब तक इसका पाणिग्रहण सस्कार सम्पन्न नही हो जाता तब तक महाविद्यालय मे आते रहना ही इसकी नियति है। इस बीच यदि इसके लिए योग्य वर की खोज सफल हो गई तो यह डाली मे बैठकर श्वसुर गह को प्रस्थान कर जाएगी। तब यह इस महाविद्यालय को उसी प्रकार त्याग देगी, जिस प्रकार परदेश म निज सम्बन्धी का आवास मिलत ही यात्री धमशाला को त्याग देता है। इश्वर कर इसको वर मिले, योग्य तो यह स्वय बना लेगी उसको।

अब उधर देखो तो सखि, सामन स वो जो दो समान सी आकृति वाले नवयुवक चले आ रहे है। ये सहोदर है। इनको अध्ययन से उतनी ही अरुचि है जितनी कब्ज के रोगी को दाल की पकौडिया स होती है किन्तु विडम्बना तो दखो सखि कि इन सुकुमारो को फिर भी यहाँ इस महाविद्यालय मे प्रवश लेना पड रहा है। इसका कारण बहुत ही तुच्छ-सा है। इन नौनिहालो के परिजनो एव विशेषकर पडौसियो की हार्दिक अभिलाषा है कि ये होनहार अधिक नही तो कम से कम दो तीन घण्टे के लिए मुहल्ले से बाहर रहे जिससे कि मुहल्ले की बालिकाएँ बिना किसी विघ्न के पाठशालाओ म जा सकें।

उधर परिसर के एक भाग मे वह जो स यासीनुमा जजर सा नवयुवक खडा होकर अपने सामने बठे आठ-दस नवयुवको से कुछ कह रहा है, वह भी महाविद्यालय मे प्रवश ले रहा है ताकि छात्र शक्ति का नतृत्व कर उसको समुचित दिशा दे सके। छात्रो की समस्याओ को प्रशासन के समक्ष रखकर उनका समाधान करवा सके। वह समझता है कि यदि उसने छात्रो का नतृत्व नही किया तो प्राचाय, प्राध्यापक और लिपिक मिलकर उनको खा जाएग एव महाविद्यालय मे प्रविष्ट हुए सौ छात्रो म से अस्सी ही वापस निकल सकेंग।

अब तनिक परिसर के बाहर का दृश्यावलोकन करो। जलपान-गृह के आग वृक्षो की छाया मे काष्ठासनो पर उष्णद्रवपानोपरान्त धूम्रपान

करत जो अति विकट युवक है, जिनमें से अधिकाश अवप्रौढ दृष्टिगोचर होने लग ह। ये इस महाविद्यालय के स्थाई छात्र है। छात्रवास के स्थाई निवासी हैं। दस वष पूव भी य यही थे एव दस वष पश्चात् भी य यही रहेंगे। हा, हर तीन चार वष पश्चात ये कक्षा अवश्य बदल लेते हैं, औपचारिकता के नाते।

अध्ययन जैसी तुच्छ वस्तु से तो इनका सम्बध उतना ही है जितना केशविहीन पुरुष का कघी से। किन्तु अपक्षाकृत अधिक महत्व के कार्यो का सम्पादन इनके द्वारा किया जाता है, यथा सुरापान प्रशिक्षण, बैठक आयोजित करना, आन्दालन मे भाग लेकर उसका गाधीवादी स्वरूप समाप्त करना, प्राध्यापको के आवास स्थलो पर जाकर उन्ह धमकियाँ दे आना, छविगृहपतियो से छोटे-मोटे युद्ध करना, किसी का आवास खाली करवाना इत्यादि। प्राचाय और पुलिस के विरुद्ध तो इनका स्थाई मोर्चा लगा ही रहता है।

अब दष्टि तनिक उधर भी डालो सखि, वह वहा जो छात्र खडे है, व महाविद्यालय मे इसलिए प्रवेश ले रहे हैं ताकि छात्रवत्ति प्राप्त कर सकें। प्रवेशोपरान्त उपस्थिति पजिका मे अपना शुभ नाम अकित करवाने के पश्चात ये अपने-अपने रचनात्मक अभियानो पर निकल पडेंगे। इसके पश्चात महाविद्यालय म ये उसी दिन दृष्टिगोचर होगे, जिस दिन छात्रवत्ति की राशि का वितरण किया जाएगा।

और वो देखो, इनके निकट ही छात्रा कक्ष के ठीक सामन कुछ रसिक प्रवत्ति क नवयुवक खडे ह। ये सौन्दयबाध रखने वाल कवि-हृदय प्रेमीनुमा अस्वस्थ से नवयुवक यहा मात्र इसलिए प्रवेश हतु आए ह कि यहाँ सहशिक्षा है। यद्यपि छात्रा कक्ष मे इस समय कोई छात्रा नही है, किन्तु नारी पदाथ की सम्भावना मात्र के प्रति इनकी जो जिज्ञासा ह, वह प्रशसनीय है।

तुम्हारा मुख कमल कुम्हला क्यो गया सखि। निराश न हो, नवयुवको की वह प्रजाति अभी पूणत विलुप्त नही हुई, जो अध्ययन हेतु महाविद्यालय मे प्रवेश हतु आत ह। ये वष भर दवे दबे, सहम सहम

रहेंगे, क्योंकि सख्या मे ये इतने कम हैं कि बेचारे अध्ययन के अतिरिक्त और कुछ कर ही नहीं सकते। राज्य को चाहिए कि वह इस प्रजाति को विलुप्त होने से बचाये। आओ सखि हम भी प्रार्थना करें ईश्वर से कि हे परम पिता, रक्षा करना इन पिछड़े विचार रखने वाले नवयुवकों की और विलुप्त होने से बचाए रखना इस दुर्लभ प्रजाति को।

दिनचर्या एक तथाकथित विद्वान की

विद्वान होना और विद्वान समझा जाना दो अलग अलग बातें हैं। यह कतई जरूरी नही कि जो वास्तव मे विद्वान हो, उसे लोग भी विद्वान समझें, और जिसे लोग विद्वान समझें, वह वास्तव मे विद्वान हो ही। इस नाचीज की राय मे तो विद्वान वही है, जिसे लोग विद्वान समझते हो, क्योकि "होने" से अधिक महत्वपूर्ण "समझा जाना" होता है।

मेरे विद्वान होने का वहम भी कई लोगो ने पाल रखा है, लिहाजा मैं अपने आपको किसी विद्वान से अधिक नही तो कम भी नही आकता। विद्वानो की दिनचर्या किस तरह की होती रही है, यह तो मैं नही जानता, पर मैं समझता हू कि उनकी दिनचर्या भी मुझ सी ही होती होगी। नोट—कुछ लोग दिनचर्या का आशय "दिन भर चरने" से लगाते है, जो गलत है। दिनचर्या का मतलब है, उठने से लेकर सो जाने तक का काय व्यापार)।

एक तरफ मैं "सादा जीवन उच्च विचार" वाली विचारधारा का कायल हू तो दूसरी तरफ आदशवादी भी कम नही हू। विशेष प्रकार के मित्रो के साथ बैठकर विदेशी-सुरा का सेवन करते समय मैं मट्ठे (छाछ) और शिकजी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए यह बताता हू कि कैसे कृष्ण को अहीरो की छोरिया छछिया भर छाछ पर नाच नचाया करती थी। हवाई-यात्रा के दौरान मैं अपन सहयात्रियो को अपने गाव मे हुई (काल्पनिक) बैलगाडियो की दौड के किस्से सुनाता हू। पच सितारा जलपानगृह मे डिनर लेते वक्त मैं किसी बुजुग की तेरहवी या चालीसवें

मे लगी जौनार का हवाला दिए बगैर नही रहता। सिफ एक, जी हा सिफ एक मुर्गा खाकर मैं सरसो की भाजी की पौष्टिकता एव शाकाहारी भोजन की सात्विकता पर कई घण्टे तक व्याख्यान दे सकता हू। आप चाहें तो आजमा कर देख सकते हैं किसी भी दिन।

वहरहाल, बात दिनचर्या की हो रही थी। लीजिए प्रात काल से ही प्रारम्भ करता हूँ—

मेरे घर (किराये के) के बाहर वाले दरवाजे के ठीक सामने नल है। यह दमयन्ती वाला 'नल" नही पानी भरने का सरकारी नल है। ब्रह्म मुहूत मे मुहल्ले की सारी पतिव्रताएँ यहाँ अपने अपने घडे भरन हेतु एकत्र होती हैं। बारी आने मे काफी समय लगता है, इसलिए समय काटने के लिए व लडाई करने लगती हैं। लगे हाथ पानी भी भरती रहती हैं। वाक युद्ध की शुरुआत व्यक्तिगत आक्षेपो से होती है। इसके बाद यह सघष पारिवारिक-स्तर को लाघते हुए राष्ट्रीय स्तर तक पहुँच जाता है। यहाँ आकर मेरी आँखें खुल जाती है और कानो का साथ दने लगती हैं, जो काफी पहले खुल चुके होते हैं।

इसक बाद पर्याप्त समय तक मैं बिस्तर मे दुबका-दुबका ही मोहल्ले के इतिहास एव भविष्य पर चिन्तन कर कुछ निष्कष निकालता हूँ। तत्पश्चात चाय ग्रहण सस्कार सम्पन्न कर मैं बिस्तर त्याग देता हूँ। यहाँ मैं त्यागमयी होने का प्रथम परिचय दता हूँ।

थाडी देर बाद मैं स्नानागार मे पहुँच जाता हूँ। प्रदेश मे व्याप्त सूखे की स्थिति पर चिन्तन करते समय मैं विचारो मे इतना खो जाता हूँ कि कितनी ही देर तक नल को पूरा खोलकर नहाता नही सिफ खडा रहता हूँ।

स्नान क्रिया सम्पन्न कर, अपने आपको कुछ वस्त्रा म लपेटकर मैं सडक वाली चाय की थडी पर पहुँच जाता हूँ। मैं थडी पर चाय पीना वन्द कर सकता हूँ, बशर्ते बडे होटलो वाले अपने यहाँ भी 'उधार' का सिस्टम शुरू कर दें। यहाँ स्टूल पर बैठकर स्टील के श्वत प्याले मे काली चाय सुडकते हुए मैं समाचार पत्रो मे बलात्कार की खबरें पढकर अपना सामान्य ज्ञान बढाता हूँ। इस सन्दभ म डाक्टर लोग जो तथ्य

प्रकाश मे लाते है, वे मुझे काफी दिलचस्प लगते है। इनसे यह पता चलता है कि किसी जिज्ञासु ने सैद्धान्तिक ज्ञान का प्रयोग व्यवहारिक रूप मे किस प्रकार किया। इसके साथ ही यह एक प्रकार का स्वस्थ मनोरजन भी होता है।

ग्यारह बजते-बजते मैं भोजन तक का फासला तय कर लेता हूँ। फिर ऊपर के कपडे बदलकर, मुर्दा चेहरे पर एक जिंदा पहचान चिपका कर कॉलेज के लिए रवाना हो जाता हूँ। रवाना होते समय मेरी इकलौती पत्नी मुझे इस तरह देखती है, जिस तरह कभी सयोगिता ने पृथ्वीराज चौहान को युद्ध म भेजते समय देखा होगा।

मै आम प्राध्यापक की तरह घर से सीधा कॉलेज नही जाता। पहले मैं अपने एक मित्र के घर जाता हूँ। उनको मेरा आना अच्छा लगता है क्योकि मेरे पहुँचते ही उनको बतन माजने और कपडे धोने से छुटकारा मिल जाता है। उनकी श्रीमतीजी का "मूड" ठीक हो तो वे मेरे साथ मित्र को भी चाय पिलाती हैं। इसके बाद मैं मित्र क स्कूटर पर लदकर कॉलेज के लिए प्रस्थान करता हूँ। (नाट—यह स्कूटर उनका खरीदा हुआ है दहज मे मिला हुआ नही है।)

मेरे य नादान मित्र समझते हैं कि वे मुझे अपने स्कूटर पर बिठाकर दस हजार रुपये (स्कूटर की कीमत) की "रिस्क" उठाते हैं, जबकि मैं समझता हूँ कि मैं अपनी जान की "रिस्क' उठाकर उनको डबल सवारी चलाने का प्रशिक्षण दता हूँ। रास्ते मे हम दोनो आदश शिक्षा व्यवस्था के सम्ब ध मे विचार विमश करते हैं।

हमारे इन माया-भक्त मित्र का कहना है कि जब हम वग विहीन समाज की बात करते हैं तो फिर वग यानि कक्षा विहीन कालेज की बात क्यो नही सोचते ? प्रथम-वप, द्वितीय वप, ततीय वप, पूर्वार्द्ध, उत्तराद्ध इस प्रकार के वग भेद की जरूरत क्या है आखिर ? इस व्यवस्था के अनेक हानिकारक परिणाम होत हैं।

जिन विद्यार्थियो को 'प्रथम वप' के अ तगत रखा जाता है, वे अपने आपको "तृतीय वप' के अ तगत आन वाले विद्यार्थिया के सामने हीन समझते हैं। इसी तरह "पूर्वार्द्ध" वाले भी अपने आपको "उत्तराद्ध"

वालो के मुकाबले तुच्छ समझते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह हीन भावना दीमक बनकर छात्रो के सारे आत्मविश्वास को चाट जाती है। यही वजह है कि वे आगे चलकर न तो लिखित परीक्षा मे पास हो पाते और न ही साक्षात्कार की वैतरणी लाघ पाते।

हमारे यहाँ यह व्यवस्था बहुत गलत है कि जो प्रत्याशी लिखित परीक्षा से लाभ उठा लेता है, उसको साक्षात्कार से लाभ उठाने का अवसर भी दिया जाता है, जबकि लिखित परीक्षा से लाभ न उठाने वाले को आगे मौका नही दिया जाता। मेरे विचार मे जो प्रत्याशी परीक्षा का लाभ नही उठा सका उसे कम से कम साक्षात्कार से लाभ उठाने का अवसर तो दिया ही जाना चाहिए।

वर्गों अथवा कक्षाओ के आधार पर विद्यार्थियो का विभाजन समाजवादी आदर्शों के प्रतिकूल है क्योकि मूल रूप से सभी विद्यार्थी समान हैं। इनमे किसी प्रकार का भेद या विभाजन करना न तो वैधानिक दृष्टि से उचित है और न ही नैतिक दृष्टि से। परीक्षा परिणामो मे अलग अलग स्तर का मूल्याकन भी विद्यार्थी विद्यार्थी के मध्य दरार उत्पन्न करता है। हैण्डसम' छात्र का 'सप्लीमेण्ट्री" और "इडियट' किस्म के छात्र का मेरिट" यह अभद्रता नही तो और क्या है ?

मैं विषय से थोडा सा क्या सारा ही भटक गया था। अब पुन दिन-चर्या पर आता हूँ। कॉलिज मे मेरे जिम्मे कुल तीन क्लासें होती हैं। इनमे से दूसरी वाली क्लास मैं कई बार ले लेता हूँ। पहली मे तो मैं स्वय नही पहुँच पाता क्योकि काम और भी हैं हमको पढाने के सिवाय क्लास लेना ही करम एक तो हो नही। तीसरी क्लास तक लडके नही रुक पाते, क्योकि उनको बाजार मे कुछेक ऐसे रचनात्मक कार्य करने होते हैं, जो उनके चरित्र निर्माण और आत्मनिर्भर बनने मे अध्ययन से अधिक अहम भूमिका अदा करते हैं।

प्राध्यापक कक्ष मे बैठने के हर्जाने के तौर पर मुझे अपने प्रिय छात्रो के कई उल्टे-सीधे स्पष्ट-अस्पष्ट प्रमाण पत्रों की सत्य प्रतिलिपियो पर हस्ताक्षर कर सत्यापन करना होता है। इस कार्य से आने वाले छात्र इतनी जल्दी मे होते है कि मुझे आज तक यह पढने का मौका ही नही

मिला कि मैं जिस पर हस्ताक्षर कर रहा हूँ, वह क्या चीज है ? और तो और मुझे उन छात्रों को भी चरित्र प्रमाण पत्र देने की चरित्रहीनता करनी पड़ती है, जो मुझे सरेआम गालियाँ देकर बेमतलब ही मेरी सहनशक्ति बढ़ाते रहते हैं।

इस सिलसिले मे मैंने एक दिन, उसी के चरित्र प्रमाण पत्र पर हस्ताक्षर करने हेतु एक नौजवान और होनहार छात्र से लेखनी माँगने की धृष्टता कर डाली। उसने हड़बड़ाकर अपनी जीन्स की सारी जेबें टटोल डाली। उसके पास सिगरेट-केश था, लाईटर था, रूमाल था, कघी थी, सिनेमा के एडवान्स टिकिट थे, एक अदद चाकू भी मुझे दिखाई दिया किन्तु लेखनी अथवा पैन उसके पास नही था। मैने एक मित्र से पैन लेकर हस्ताक्षर किए। वह छात्र मुझे बिना कलम के कॉलिज आया जानकर इस तरह देख रहा था, जैसे कोई जगल का ठेकेदार उस लकड़हारे को देख रहा हो, जो बिना कुल्हाडी लिए काम पर चला आया हो।

शाम को मुझे मियादी बुखार की तरह घर आया देखकर पत्नी को प्रसन्नता जैसा कुछ होता है, साथ ही सही सलामत अवस्था मे जानकर कुछ आश्चय भी। कॉलिज में अत्यधिक अध्यापन काय से उत्पन्न थकान का हवाला देकर मैं गृहस्थी की गाडी के इस दूसरे पहिए से चाय की फरमाइश करता हूँ जिसे कभी-कभी वह कबूल भी कर लेती है। इसके बाद कभी मूड हुआ तो पत्नी से झगडा कर लेता हूँ, अन्यथा रात दस बजे तक गुलाम अली सहाब से उन शाइरो की गजलें सुनता हूँ, जो मेरे पैदा होने से पहले ही मर चुके थे।

खा पीकर सोने से पहले मैं पत्नी के साथ नियमित रूप से चलचित्र चर्चा करता हूँ। यह चर्चा तब तक चलती है, जब तक कि वह चलचित्र-अवलोकन की अभिलाषा व्यक्त नही करती। आर० डी० बमन की मधुर आवाज और भप्पी लाहिडी के शास्त्रीय-सगीत को लेकर हम प्राय एकमत हो जाते हैं, किन्तु जीनत अमान के पहनावे की मैं जितनी तारीफ करता हूँ, वह उतनी ही बुराई करती है। कल्पना अय्यर की नृत्यकला मे नृत्य है अथवा नही, मौसमी चटर्जी के दात बत्तीस हैं अथवा तेतीस,

आनन्द बक्खशी को ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया जा सकता है अथवा नहीं आदि कुछ ऐसे मसले हैं जिन पर हम दोनो में काफी मतभेद हैं। हार मान लेना या बहस मे थक जाना हम दोनो ने ही नहीं सीखा। इस बात को हमारे पडौसी अच्छी तरह से जानते हैं।

आपने देखा होगा कि मेरी दिनचर्या मे अध्ययन जैसा कुछ भी नही है। दरअसल बात यह है कि छात्रो को पढ़ाने के लिए मुझे पढ़ने की आवश्यकता कभी नही पडी, क्योकि उनकी दृष्टि मे मेरी उपयोगिता मात्र महत्वपूण प्रश्न बताने वाले ज्योतिषी की-सी है।

अन्त मे मैं यही कहूँगा कि अगर हमारा कोई देश है, और उसका कोई भविष्य है तो समझ लीजिए वह मेरे हाथ मे है। लेकिन मेरा भविष्य किसके हाथ मे है ? यह मुझे पता नहीं। जिस दिन पता चल जाएगा, फिर या तो मैं नही या या या। मैं ही नही।

साक्षात्कार कुछ नवयुवतियो से

एक दिवस अनायास मुझे एक पत्र बरामद हुआ, जो एक निजी-कन्या-महाविद्यालय के प्राचाय द्वारा प्रेषित किया गया था। उसको खोलकर पढ़ते ही मैं आश्चर्य के सागर मे डुबकियाँ लगाने लगा, क्योंकि उन्होने न केवल मुझे विद्वान समझा था बल्कि महाविद्यालय के लिए प्राध्यापिकाओ के चयन हेतु आयोजित होने वाले साक्षात्कार मे एक विशेषज्ञ की हैसियत से बुलाया भी था। मेरे भाव अकाल मे अनाज की भाँति तुरन्त बढ गए। उत्साह मे मैंने वह पत्र अपने कई साथियों को दिखा डाला। उन्होने "बधाई हो" इस अदाज मे कहा, मानो कह रहे हों—"सत्यानाश हो इस कद्रदानी का" कुछ वरिष्ठ साथियो ने मुझे घूरते हुए दूसरे वरिष्ठ साथियों की ओर इस तरह देखा, जैसे पूछ रहे हों—"अरे, यह लल्लू, विशेषज्ञ कब से हो गया ?"

साक्षात्कार हेतु निर्धारित तिथि की पूव दोपहर को मैं उस महाविद्यालय में पहुँचा तो मैंने उसको बन्द पाया। वैसे तो महाविद्यालय को इस अवस्था मे देखकर मुझे सदैव ही आत्मिक शान्ति मिलती रही है, लेकिन यहाँ बात दीगर थी। बहरहाल मुझे वहाँ एक चौकीदारनुमा चपरासी मिल गया। उसने मेरा परिचय प्राप्त किया और मुझे साथ ले प्राचाय जी के आवास की ओर चल दिया। जितनी देर मे उसने तम्बाकू और चूने को हथेली पर मसलकर, फटककर मुँह मे रखा, उतनी देर मे हम गतव्य तक पहुँच गए।

दरअसल यह महाविद्यालय उस क्षेत्र के प्रसिद्ध पूँजीपति ने बनवाया था। इसके असली प्रशासक तो वे स्वय थे, बाकी खानापूर्ति के लिए सेठ

जी के बहनोई थे, जो आचार्य पद की शोभा बढ़ा रहे थे। आचार्य जी सेठ जी के यहीं घर-बहनोई के रूप में रह रहे थे। (विशेष टिप्पणी—ससुर के पश्चात् ससुराल का स्वामी साला हो जाता है। ऐसी स्थिति में घर जवाई को 'घर-बहनोई' कहना अधिक उपयुक्त है)।

सेठ जी से मेरी मुलाकात रात्रि में भोजन पर ही हो सकी। एकाध औपचारिक बातों के पश्चात् मैंने कहा—

"इस कॉलेज का शुरू करने में खर्चा तो काफी हुआ होगा।"

"सो तो है ही और आप जाणा मास्टर जी कि कार-ब्योपार के अन्दर इनवस्ट तो करणो ही पड़े।" आचार के एक टुकड़े का मिझोड़ते हुए वे बोल रहे थे। मेरी इच्छा थी कि वे 'मास्टर' की जगह कोई और ग्लेमस सम्बोधन, मसलन—प्रोफेसर, लेक्चरर वगैरह काम में लेते। बहर हाल। मैंने बात को आगे बढ़ाया।

"चलो इस क्षेत्र की लड़कियों की उच्च अध्ययन की समस्या तो समाप्त हो गई।"

"क्षेत्र वालो के लिए तो किया ही ये सब, मेरी बच्चियाँ तो पढ़ने से रही इसमें" उनके दाँतो में आम के आचार का कोई रेशा घुसपैठ कर बड़ी बशर्मी से फंस गया था। उसको निकालने में जब वे सफल हो गए तो मैंने पूछा—

"क्यों आपकी बच्चियाँ क्यों नहीं ?"

"बस जी पढ़ लिया स्कूल तई भौत है ज्यादा पढ़ाकर कोई बिगाड़ना थोड़ी ही है उनको और पढणों भी हो तो और घणी कालेजाँ हैं।" सेठ जी ने कहा। उनका निःस्वार्थ भाव और यथार्थवादी दृष्टिकोण देखकर मेरी आत्मा प्रसन्न हो गई।

भोजन के बाद तिनके से दाँतों की तलाशी लेते हुए अपने छोटे लड़के दौलत चन्द को आवाज दी। "जी पिताजी" के स्वर के साथ वह तुरन्त प्रकट हुआ। सेठ जी ने उससे कहा—"वो फारम पड़े हैं न, लाकर दिखा दे मास्टर जी को और सब समझा दे इनको।" लड़का 'जी' कहते हुए भीतर गया और कुछ पल बाद 'ये रहे' कहते हुए बाहर आया,

आवेदन-पत्रों के साथ इधर वह आकर मेरे सामने बैठा और उधर सेठ जी शयन हेतु प्रस्थान कर गए।

दौलत चन्द ने सक्षेप मे मुझे समझाया कि कुल बत्तीस आवेदन-पत्र हैं, जिनमें से चार को लेना है। उसने वे चार आवेदन-पत्र अलग रख दिए फिर इससे पहले कि मैं कोई बात शुरू कर दूं, वह जम्हाई लेते हुए बोला—"अब आप आराम कीजिए" और स्वय भी आराम करने चला गया। मैंने उसकी सलाह का आदर किया।

दूसरे दिन कॉलेज कार्यालय जाने से पूव मैंने सेठ जी से साक्षात्कार के सन्दभ मे एकाध बात की।

"आपने साक्षात्कार से पहले ही तय कर लिया कि किसको नियुक्त करना है।" मेरा प्रयास था कि लहजा केवल जिज्ञासा का रहे, शिकायत का नहीं।

लेकिन वे एकदम सपाट और कुछ तेज स्वर मे कहने लगे—"तो और तय कौन करेगा, कॉलेज हमने खोला है तो नौकरी पर भी हम ही रखेंगे।"

"फिर साक्षात्कार की क्या तुक है?" मेरे मुंह से निकला।

"यू लागे है आप इस किसम के काम में पहली दफा आए हो मास्टरजी, नही तो आप जाणो ऐसा ही होवे है।" उनके स्वर मे कुछ ककशता आ चली थी। यह स्वय उन्होंने भी महसूस किया। इसीलिए स्वर को कुछ मुलायम बनाने का प्रयास करते हुए वे आगे बोले—"आप जाणो मास्टरजी कि फारमलटी तो पूरी करणी ही पड़े। वहाँ और लोग भी तो होंगे, उनको भी लगणी चाहिए कि वास्तव मे हुआ है वो क्या कहते हैं, साक्षात्कार।"

"इसमे मुझे क्या करना है?" मैंने आत्मसमपण एव समझौते के मिले-जुले स्वर मे कहा।

"हे हें-हें "कुछ हँसकर वे कहने लगे, "एक तरह से तो आपको कुछ नही करणी है और एक तरह से सब कुछ आप ही को करणी है हे हें हे—"

"साफ-साफ बताइए न।"

"आपको बस इत्ता सा करणा है कि आप उन चार लड़कियों से, जिनको लेणा है, ऐसे सवाल पूछो, जिनका वो जबाब दे सके, बाकी से "

"बाकी मैं समझ गया।" मैंने तुरन्त कहा।

"समझदार तो आप हो ही चैर जो है सो" उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा और हें हें-हें हँसते हुए चल दिए।

दस बजे साक्षात्कार की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। चयन समिति में कुल चार आदमी थे। मैं, दौलत चन्द, आचार्य जी और एक भूतपूर्व विधायक। (आना तो वैसे वर्तमान विधायक को था, लेकिन वे कुछ गुडों को छुड़ाने अचानक थाने चले गए)।

कुल बत्तीस प्रत्याशियों में से अट्ठाईस साक्षात्कार हेतु उपस्थित हुईं। मेरे लगभग सामने, आने वाली प्रत्याशी के लिए निर्धारित कुर्सी के पास वाली कुर्सी पर दौलत चन्द बैठा था। इसके दो कारण थे। एक तो उसको यह आशंका थी कि कहीं मैं चयनित होने वाली प्रत्याशी को पहचानने में भूल न कर बैठूं (दूसरा कारण उसकी व्यक्तिगत-रुचि से सम्बन्धित था, जो कि "केवल व्यस्कों के लिए" श्रेणी का होने के कारण सभ्रान्त सज्जनों के पठन योग्य नहीं) जैसे ही उन चार में से कोई आती, वह तुरन्त मुझे संकेत से समझा देता कि इसको नियुक्त होना है। हालांकि इसकी जरूरत थी नहीं।

हमने सभी बत्तीस प्रत्याशियों से साक्षात्कार किया। इनमें से कुछ साक्षात्कार मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ, ज्यों के त्यों, इस उम्मीद के साथ कि अन्य विशेषज्ञ इससे कुछ लाभ उठा सकेंगे।

\+ + +

(एक)

(एक साधारण नाक-नक्श वाली युवति, जिसको नियुक्त नहीं होना था)—

मैं आपका नाम ?

वह अलका यामिनि।

मैं क्या करती हैं आजकल आप ?

वह बेरोजगार हूँ।
मैं कब से ?
वह एम०ए० किया तब से।
मैं आप विवाहित हैं या अविवाहित ?
वह अविवाहित।
मैं कब से ?
वह (परेशानी के स्वर मे) जी !!
मैं मैं पूछ रहा हूँ कि अविवाहित कितने दिनो से हैं आप ?
वह जी ! वो मैं •
मैं तो आप अविवाहित हैं !
वह जी।
मैं तो फिर आपने यह इतनी बडी बिन्दी क्यों लगा रखी है ?
वह यू ही।
मैं यू ही क्या-क्या करती हैं आप ?
वह कुछ काम।
मैं जैसे ?
वह जैसे
मैं साक्षात्कार मे आना ! क्यो !
वह जी !!
मैं जाइए आप।
(उसका प्रस्थान)
विधायक पहले ही सवाल मे नानी मर गई।
(एक हल्की-सी सयुक्त हँसी)

\+ \+ \+

(दो)

(वह सुन्दर एव आधुनिक युवति, जिसको नियुक्त होना था)।
मैं आपका नाम ?
वह वल्लरी आहूजा।
मैं भारत का प्रधान मत्री कौन है ?

वह राजीव गांधी ।
मैं राष्ट्रपति कौन है !
वह वेंकटरमन ।
मैं आप समझी नही । मैं उपराष्ट्रपति के बारे मे नही पूछ रहा हूं । मैं तो ज्ञानी जी के बारे मे
वह (जल्दी से) ज्ञानी जैल सिंह, सर ।
मैं गुड ! अच्छा यह बताइए, पाँच और दो कितने होते हैं ?
वह सात ।
मैं छ और एक ?
वह सात ।
मैं वेरी गुड ! नाऊ यू कैन गो ।
(प्रस्थान)
प्राचार्य आत्म विश्वास तो कूट-कूट कर भरा है इसमे ।
(उसकी इंटेलीजेंसी को लेकर एक संक्षिप्त चर्चा)

\+ \+ \+

(तीन)

(एक साधारण-सी युवति, जिसको नियुक्त नहीं होना था ।)
मैं आपका शुभ नाम ?
वह अरुणा ।
मैं यह शुभ ही है, यह आप कैसे कह सकती हैं ?
वह (चुप रही)
मैं आपका नाम अरुणा है सध्या क्यो नहीं ?
वह जी इस सम्बन्ध मे तो मैं क्या कह सकती हूं !
मैं फिर किस सम्बन्ध मे कुछ कह सकती हैं आप ?
वह (चुप)
मैं आपने नाम सुना है ?
वह किसका ?
मैं मैं जिसका पूछ रहा हूँ ।
वह लेकिन आप पूछ किसका रहे हैं ?

मैं बाबर का।
वह सुना है।
मैं उसकी मौसी का क्या नाम था ?
वह (रुआँसी सी होकर) मुझे नहीं आता।
मैं राम जिस दिन वनवास के लिए रवाना हुए, उस दिन क्या तारीख थी ?
वह याद नहीं।
मैं जाइए फिर आप।

(उसका प्रस्थान)

(उसकी मूर्खता के संदर्भ में एक संयुक्त चर्चा)

\+ + +

(चार)

(वह लड़की जिसका चयन होना था)

मैं आपका नाम ?
वह विविधा व्याकुल।
मैं आपकी शिक्षा ?
वह एम०ए०।
मैं अकबर किस देश का शासक था ?
वह इण्डिया का।
मैं शिवाजी हिन्दू थे या मुसलमान ?
वह मुसलमान।
मैं आप समझीं नहीं। मैं उन शिवाजी के बारे में पूछ रहा हूँ, जिन्होंने हिन्दू स्वराज्य की स्थापना का प्रयास किया, वे क्या थे ?
वह हिन्दू।
मैं बहुत खूब ! राम और सीता के मध्य क्या रिश्ता था ?
वह देवर-भाभी का।
मैं आप सीता लक्ष्मण का रिश्ता बता रही हैं, मैं राम-सीता दम्पती का रिश्ता पूछ रहा हूँ।

वह पति-पत्नी था।

मैं बहुत सुन्दर। अब आप जा सकती हैं।

(उसका प्रस्थान। हम मे एक हल्की सयुक्त चर्चा)

\+ \+ \+

(पाँच)

(वह लडकी, जिसका चयन नही होना था।)

मैं आपका नाम ?

वह रजनी ग्वाल।

मैं आप जानकीवल्लभचरणकमलरजघूलिदास[1] के बारे मे क्या जानती हैं ?

वह (अचकचाकर) कुछ नही।

मैं आपने एम०ए० किस विषय मे किया ?

वह इतिहास मे।

मैं आप रसायन शास्त्र पढ़ा सकती हैं ?

वह नही।

मैं क्यो नहीं ?

वह क्योकि मैंने एम०ए० इतिहास

मैं (बीच मे) यह आप कह चुकी हैं अभी।

वह जी।

मैं इतिहास की तो सब जानकारी होगी आपको।

वह सब तो नही, लेकिन

मैं : लाल किले के प्रवेश द्वार मे जो किवाड लगे हैं, उनका वजन कितना है ?

वह याद नही।

मैं महाराणा प्रताप के लडके अमरसिंह के हाथों मे से घास की रोटी कौन छीन ले गया था ?

वह एक बन बिलाव।

मैं उस बन बिलाव ने उस रोटी का क्या किया ?

---

1 अमृतलाल नागर के उपन्यास 'मानस का हस' में एक पात्र का नाम।

वह खा गया।

मैं क्या वन बिलाव घास की रोटी खा सकता है ?

वह कहा नही जा सकता।

मैं 1857 मे झाँसी की रानी किस तलवार से लड़ी, वह आजकल कहाँ हैं ?

वह मालूम नहीं।

मैं जाइए आप।

(उसका प्रस्थान)

विधायक इसे खुद नहीं आता कुछ तो छोरियो को क्या पढाएगी ? मट्टी की राख ! (हें हें-हें कर हम सबका हँस देना)

\+ + +

(छ)

(वह सुन्दर-सी नवयुवति, जिसको नियुक्त होना था।)

मैं आपका नाम ?

वह सुनयना।

मैं आपकी शिक्षा ?

वह एम०ए० इन ज्योग्राफी।

मैं हिमालय किस दिशा मे है ?

वह दक्षिण मे।

मैं और विंध्याचल ?

वह उत्तर में।

मैं आप उल्टा बता रही हैं सुनयना जी, सीधा बताइए।

वह सर। हिमालय उत्तर मे है और 'वो' दक्षिण मे है दूसरा वाला जो आप पूछ रहे हैं।

मैं आप सर्वाधिक जागरूक किसके प्रति हैं ?

वह सौन्दय के प्रति।

मैं सुन्दर अच्छा यह बताइए, काजल का जो सम्बन्ध आँखों से है, वही सम्बन्ध लिपस्टिक का किससे है ?

वह होठो से।

मैं हार का जो सम्बन्ध गले से है, चूडिया का वही सम्बन्ध किस से है ?

वह कलाईया से।

मैं नकली तिल ललाट पर अच्छा जचेगा या कपोल पर ?

वह वह तो सर, होठ के आखरी सिर पर ठीक लगेगा रति की तरह या फिर होठ के निचले सिरे पर होना चाहिए रेखा की तरह।

मैं अच्छा यह बताइए, मुर्गी अण्डा देती है या बच्चा ?

वह अण्डा।

मैं अण्डे से क्या बनता है ?

वह आमलेट।

मैं थैंक्यू वेरी मच। आप जा सकती हैं अब।

(उसका प्रस्थान)

प्राचार्य सामान्य समझ एव विश्लेषण शक्ति पर्याप्त मात्रा मे है।

(हल्की सयुक्त चर्चा)

\+ \+ \+

(सात)

(ऐसी नवयुवति जिसको नियुक्त नहीं होना था)

मैं आपका नाम ?

वह नमिता।

मैं आप कॉलेज में पढा सकेंगी ?

वह जी हाँ।

मैं लडकियो को ?

वह जी।

मैं अच्छी तरह से ?

वह हाँ।

मैं आपका विवाह हो गया ?

वह जी नहीं।

मैं क्यो ?

वह अभी तक जरूरत नही समझी मैंने।

मैं जरूरत कब समझेंगी आप ?

वह (चुप)

मैं खैर, विवाह के बाद आप पति के साथ ससुराल जाना पसद करेंगी या कॉलेज मे पढाना ?

वह जी, विवाह के बाद ससुराल तो जाना ही पडेगा।

मैं तब यहाँ कालेज मे कौन पढाएगा ?

वह मेरी जगह कोई और आ जाएगी।

मैं तो फिर उस कोई और को ही हम नियुक्त क्यो न कर लें।

वह जी !!

मैं आप जा सकती हैं।

(उसका प्रस्थान)

विधायक ब्याह तक टाइम पास करना चाहती है नौकरी के बहाने।

हम सब और क्या !

\+ \+ \+

(आठ)

(वह नवयुवति जिसको नियुक्त होना था)

मैं आपका नाम ?

वह अनामिका।

मैं आपकी शिक्षा ?

वह एम०ए०

मैं आपको स्वेटर बुनना आता है ?

वह जी हाँ।

मैं हाथ से या मशीन से ?

वह दोनों से ही।

मैं गुड ! भारत कब आजाद हुआ ?

वह 15 अगस्त, 1947 को।

मैं भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री कौन थे ?

वह जवाहर लाल नेहरू।

मैं आपकी हॉबी ?

वह साहित्य पढना।

मैं वतमान कवियो मे से सर्वाधिक प्रभावित किसने किया आपको ?

वह आनन्द बक्खशी ने।

मैं धन्यवाद, आप जा सकती हैं।

(उसका प्रस्थान, एक सयुक्त हल्की चर्चा)

+ + +

साक्षात्कार प्रक्रिया सम्पन्न हुई। हम सबने नियुक्ति-आदेशो पर हस्ताक्षर किए, जो साक्षात्कार से पहले ही टाइप हो गए थे फिर एक-दूसरे से अनिच्छा पूवकहाथ मिलाते हुए हम विदा हो गए।

पोथी पढ-पढ जग मुआ पण्डित भया न कोय

अच्छे भले आदमियो को निकम्मा बनाने म सर्वाधिक योगदान जिस चीज ने दिया है वह है—पुस्तक। सुधिजनो का मत है कि पुस्तकें पढ लेने के बाद आदमी जो है वो सौ मे से नियानवे कार्यों के लिए बेकार हो जाता है। हमारे पूवज आय (बन्दर नही) इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे कि समाज मे पुस्तक का होना अनिष्टकारी सिद्ध हो सकता है, इसलिए उन्होने सैकडो बरसो तक वैदिक ज्ञान को मौखिक रूप मे ही रखा और पुस्तको के झझट से बचते रहे। लेकिन कालान्तर में अज्ञान के साथ-साथ पुस्तकों का प्रचलन भी बढता गया और आज स्थिति यह है कि तीना पीढियाँ इन पुस्तको से परेशान हैं। कहा जाता है कि वैदिक-साहित्य को लिखित रूप देने का काय सवप्रथम कश्मीर मे प्रारम्भ हुआ। इसका मतलब कश्मीर मे उस समय भी जो गतिविधियाँ होती थी, वे झझट पैदा करने वाली ही होती थी।

बुरा हो चीन वालो का, जिन्होने पता नही क्या सोचकर कागज और मुद्रण-कला का आविष्कार कर डाला। अरे भले आदमियो, आविष्कार अगर हो भी गया तो रखते उसे अपने पास, दुनियाँ के लिए बारूद की देन क्या कम थी आप विद्वानो की।

तो जनाब, पुस्तको का प्रचलन हुआ, लोग पढने लगे और निकम्मे बनने लगे, जबकि भ्रम वे यह पालते रहे कि वे विद्वान बन रहे हैं, पण्डित होने जा रहे हैं। कबीरजी से यह देखा नही गया सो उन्होने ऐसे लोगो को लताडते हुए कहा—"पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पण्डित भया न कोय, ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होय" अहा! कितना छोटा 'सलेबस'

रखन की सलाह दी थी कबीरजी ने पण्डित की उपाधि के लिए पर उनकी कोई सुनता तब न।

पुस्तकें पढ-पढ कर अपना भविष्य बिगाड लेने वालो पर जो आक्षेप कबीर जी ने किया, उसका अनुसरण कालान्तर के कवियो ने भी किया। बकौल एक फिल्मी कवि के—"सकूल मे क्या पढोगे हो राम दिल की किताब पढ लो।" खाक्सार के विचार मे 'ढाई आखर प्रेम का' जो है सो इस 'दिल की किताब' मे ही कही होना चाहिए किन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि कबीर से लेकर आनन्द बक्खशी तक लगातार आक्षेप किए जाने के बावजूद भी पाठयक्रम निर्धारणकर्ताओ के कानो पर जू तक नही रेंगी और वे हमेशा इसी उधेडबुन मे लगे रहे कि छात्रो के बस्ते का बोझ एक गधे के लदान से अधिक कैसे हो, भगवान सद्बुद्धि दे इनको।

सतोष का विषय है कि हमारी वतमान युवा-पीढी कबीर की उस लताड से काफी हद तक प्रभावित हुई और वह ढाई अक्षरा के मनन मे व्यस्त हो पुस्तका से अपना सम्बन्ध वैस ही तोडती जा रही है जैसे कोई नाविक तट पर आकर पतवारो से विमुक्त हो जाता है। इसके फल-स्वरूप आज अधिकाश पुस्तकें या तो पुस्तकालयो की अलमारियों की सुन्दरता मे वृद्धि कर रही हैं या फिर दीमको के लिए खाद्य सामग्री के रूप मे प्रयुक्त हो रही हैं। अत आज इस विषय पर बहस की पर्याप्त सम्भावनाएँ बन गई हैं कि पुस्तक छात्रप्रिया है अथवा दीमकप्रिया ?

किन्तु पुस्तक पढने के प्रचलन के कम होने अथवा समाप्त होने से पुस्तको का प्रकाशन कम हो जाएगा या बन्द हो जाएगा, ऐसा कदापि नही है, क्याकि प्रकाशन और अध्ययन दो अलग अलग चीजें हैं। एक व्यवसाय है दूसरा प्रवृत्ति।

प्रकाशन का जहाँ तक प्रश्न है, आजकल दो प्रकार की पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं—एक आम आदमी के लिए और दूसरी राजकीय पुस्तकालयो के लिए। प्रथम प्रकार की पुस्तको मे सामग्री के अलावा अन्य किसी चीज का ध्यान नही रखा जाता जबकि दूसरे प्रकार की पुस्तको म सामग्री के अलावा शेष प्रत्येक चीज का ध्यान रखा जाता है। जैसे सुन्दर आवरण, चिकना कागज, भरपूर कीमत इत्यादि।

पुस्तकालयो के लिए प्रकाशित की जाने वाली पुस्तक को खरीदने की गलती आम आदमी न कर बैठे, इसलिए उनकी कीमत मजबूरन अधिक रखनी पडती है।

कई मतबा ऐसी स्थिति आ जाती है कि पुस्तकालय मे पुस्तको को रखने के लिए जगह नही होती, किन्तु देश मे चल रही बौद्धिक गिरावट को रोकने के लिए पुस्तको पर व्यय करना आवश्यक हो जाता है। ऐसी स्थिति मे प्रकाशक से केवल बिल मगा लिया जाता है, क्योकि उसको रखने के लिए अधिक जगह की आवश्यकता नही होती। इस कायप्रणाली से दोनो ही पक्षो को लाभ होता है। एक ओर पुस्तकालय पुस्तका पर व्यय कर बौद्धिकता के प्रति अपन कतव्य को पूण करता है, तो दूसरी ओर प्रकाशक एक ही पुस्तक को कई बार बेच लेता ह। यह बहुत ही उम्दा तकनीक है। इसका विकास किया जाना चाहिए और इस अन्य क्षेत्रो मे भी प्रयुक्त किया जाना चाहिए। क्योकि यदि हम एक ही वस्तु को चार बार बेच सकें तो इससे हमारा लाभ एकदम चार गुना हो सकता है।

पुस्तक के उपयाग अनेकानेक है। छात्रो के हाथो मे रहने वाली पुस्तकें परिवहन निगम की बसो मे परिचय पत्र का काम देती है तो जलपानगृह म खाली जेब नाश्ता कर लेने वाली स्थिति मे मुद्रा के ऐवज मे धरोहर की भूमिका भी बेहिचक निभाती है। बड आकार की पुस्तकें शयन मे सिरहाने लगाई जाती है। खिडकी मे अगला न हो और तेज हवा मे वह खटपट कर रही हो तो पुस्तक से उसको रोकने का काम लिया जाता है। खूब गाढे एव मजबूत आवरण की पुस्तक लडाई मे पत्थर की भूमिका भी निभाती है। पाठ्यक्रम से सम्बधित पुस्तकें अनिद्रा के रोगी के लिए रामबाण ओषधि का काय करती हैं। कम पढे लिखे लोग पुस्तक का इस्तेमाल बतौर तोहफे के भी करते हैं। पुस्तक से अँगीठी सुलगाने की परम्परा तो हमारे यहा काफी पहले से है ही, आजकल कुछ महानुभाव सवैधानिक सामग्री से सम्बन्धित पुस्तको का उपयोग सावजनिक रूप से जलाने मे भी करने लगे हैं। यदा कदा कोई साहित्य प्रेमी पशु क्षुधा शमन् सामग्री के रूप मे भी इनको प्रयुक्त कर लेता है। छोटे बच्चो के लिए पुस्तक एक आदर्श खिलौने का रोल अदा करती है हा एकाध

पुस्तकें अध्ययन के काम भी आती हैं । इस पर कुछ विस्तार से चर्चा करना अप्रासंगिक न होगा ।

पुस्तक पढना एक कला है । कुछ लोग खरीद कर पढते हैं, कुछ माँग कर पढते हैं तो कुछ पढ रहे व्यक्ति के पीछे से (कंधे पर से) उचक कर पढते हैं । कुछ लोग पुस्तक को पढते हैं, कुछ देखते हैं तो कुछ दिखाते है (दूसरा का) देखन वाले तरीके मे सबसे बडी सुविधा तो यह है कि इसमे भाषा, लिपि व्याकरण इत्यादि का झझट नही होता । यही कारण है कि कुछ विशिष्ट पुस्तकें अनपढ व्यक्ति के लिए भी उतनी ही सरस और आनन्ददायी होती हैं जितनी कि एक पढे लिखे व्यक्ति के लिए। दिखान के काम मे आन वाली पुस्तकें अमूमन विदेशी लेखको की होती हैं।

सर्वाधिक आदश पाठक तो वह होता है जो पुस्तक के प्रति "ज्यो की त्यो धर दीन्ही चदरिया वाली नीति अपनाते है । इसका आशय यह नही कि वे जतन कर पढते हैं। वस्तुत पुस्तक वे लाते अवश्य हैं किन्तु उसका पढने की त्रुटि व कभी नहीं करते। कहना न होगा कि यह शैली पाठक एव पुस्तक दानो ही के लिए लाभदायक रहती है ।

आजकल पूरी पुस्तक की बजाए उसक कुछ पृष्ठ ले आने का रिवाज भी चल पडा है और काफी लोकप्रिय हो रहा है। वे छात्र जो उपयोगितावाद के हामी हैं, अध्ययन के लिए पुस्तकालय से पूरी पुस्तक नही लाते बल्कि सम्बधित पुस्तक के सिफ उतन ही पृष्ठ उसमे से निकाल कर ले आते है जितन कि उनके हिसाब से उपयोगी होते हैं । सतोषी स्वभाव इसी को कहते हैं । ये छात्र उस सीख का पालन कर रहे हैं जिसमे कहा गया था कि 'साधु ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय, सार सार को गहि रहे थोथा देई उडाय" ।

कुछ अति जिज्ञासु किस्म के पाठक पुस्तक पढने मे इस कदर डूब जाते है कि पष्ठ का पढकर वे एक पष्ठ पलट गए अथवा चार, यही ध्यान नही रहता । आधुनिक समय म इस किस्म के गम्भीर पाठको की सख्या बढती जा रही है । पुस्तक पढने की एक विशिष्ट शैली वह भी होती है, जिसमे जुडे हुए पृष्ठो को भी अलग करने की आवश्यकता नही होती ।

जिस प्रकार चेहरा देखकर यह मालूम करना मुश्किल है कि मन मे क्या है। उसी प्रकार पुस्तक का आवरण देखकर यह कह सकना भी कठिन है कि भीतर क्या सामग्री होगी। सयोग से एक दिन मुझे एक प्रतिष्ठित परिवार के नवयुवक के अध्ययन-कक्ष मे जाने का अवसर प्राप्त हुआ। कुछ समय के लिए मैं कक्ष मे अकेला रहा तो मैंने कुछ पुस्तकों को टटोलना शुरू किया यू ही।

एक पुस्तक जिसके आवरण पर "सांख्यकी के मूल तत्व" लिखा था। मैंने खोली तो पता चला कि यह तो आवरण मात्र है। इसके भीतर वास्तव मे जो पुस्तक है, उसका नाम है "कातिल हसीना" इसके अलावा मैंने जो पुस्तकें देखी, उनमे से कुछ इस प्रकार थी—'पच्चीस साहित्यिक निबन्ध' उर्फ 'एक सौ एक प्रेम पत्र', 'योग और स्वास्थ्य' उर्फ 'जवानी की भूल', 'भारतीय सस्कृति' उर्फ 'सलवार के सलवट,' इत्यादि। अधिक पुस्तकों को टटोलने का अवसर मुझे नही मिला, क्योकि वह जिज्ञासु कक्ष मे लौट आया था।

पुस्तक का पहला मुकाम प्रकाशन सस्थान और अन्तिम मुकाम रद्दी का ठेला होता है। देर सबेर प्रत्येक वही जा कर विश्राम करती है। जब कोई नतिक शिक्षा से सम्बन्धित पुस्तक के प्रकाशन की योजना बनती है तो रद्दी का धधा करने वालो मे हर्ष की लहर दौड़ जाती है। क्योकि इस प्रकार की पुस्तकों की गति अपेक्षाकृत अधिक होती है, लिहाजा वे पहले से आखरी मुकाम पर पहुँचने मे अधिक समय नही लेती।

अन्त मे एक शिकायत का निराकरण करना आवश्यक है। हिन्दी भाषी छात्रो को शिकायत होती है कि पुस्तकालय मे अग्रेजी माध्यम की पुस्तकें अधिक होती है। इसी प्रकार अग्रेजी भाषी छात्रो की शिकायत हिन्दी माध्यम की पुस्तको की बहुलता को लेकर है। यह विडम्बना नही बल्कि एक सुनियोजित व्यवस्था है। भाषा की सकीर्णता न पनपे और छात्र दूसरी भाषाओं के प्रति उदासीन न हो जाएँ, इसके लिए भी यह व्यवस्था आवश्यक है। इसके अतिरिक्त पुस्तकें फटें नही, उनकी चमक-दमक बनी रहे, इसके लिए भी यह एक कारगर व्यवस्था है।

सखि री सुन परीक्षा ऋतु आई।

हे सखि देखो, ग्रीष्म अब अपने पख फड़फड़ाने लगा है और राजपथ पर विचरण करती कोमलांगिया के अरुणिम कपोलो पर स्वद बूदो के रूप मे स्वय का प्रकट कर रहा है। वन उपवन के अधिकाश वक्ष सारे पत्तों से मुक्ति पाकर नवीन पत्तो की उम्मीद म उस स्त्री की भाँति खड़े हैं, जो गोद वाले शिशु के छिन जाने पर उदर वाले की आस लगाती है। माघ माह के शुभारम्भ के साथ ही छात्र छात्राओ मे एक विशेष प्रकार का भय व्याप्त हो गया है, एक नवीन प्रकार की हलचल प्रारम्भ हो गई है, क्योंकि परीक्षा-ऋतु आ गई है।

जिस प्रकार विरहिणी के लिए पावस ऋतु दुखदायी होती है, उसी प्रकार छात्र समुदाय के लिए परीक्षा ऋतु प्राणलेवा होती है। इसकी मार नव-पल्लव पर तुपारपात की भाँति भयकर होती है। जिस प्रकार भारी मेघ-गजन सुन कर मगशावक बेकल हो जाता है उसी प्रकार हे सखि देखो, उस छात्र को जो महाविद्यालय के सूचना पट्ट पर विश्वविद्यालय का परीक्षा कायक्रम देख कर कैसे शकित होकर पूछ रहा है, कि क्या परीक्षा सचमुच होगी? क्या स्थगित हाने की तनिक भी सभावना नहीं। और जब उसको यह बताया गया कि परीक्षा सचमुच हागी और पूव निर्धारित कायक्रम के अनुसार होगी, तो वह अद्ध मूर्च्छित होकर कह रहा है—'अब क्या होगा?' ऐसे मे उसका एक अनुभवी सखा उसे धीरज बधाते हुए कह रहा है—"धैय धारण करो मित्रवर, होगा तो वही जो ईश्वर को स्वीकार होगा।"

जिस प्रकार हे सखि श्राद्ध मे ब्राह्मण-वग का महत्व बढ़ जाता है,

उसी प्रकार परीक्षा ऋतु मे प्राध्यापको की भी पूछ होने लगी है। जिन प्राध्यापको का छात्रो के लिए अब तक कोई उपयोग न था वे अब चतन्य होकर ज्योतिषी की भूमिका निभा रहे हैं और संभावित प्रश्नो की सूची अपने शिष्यो को प्रदान कर रहे है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो अनेक द्रोणाचाय अनेक अर्जुनो को नवीन तकश थमा रहे हो। मुख्य प्रश्न लिखते समय प्रश्न सख्या की बहुलता को देख कर वह कृशकाय छात्रा अपनी सहपाठिन से प्राध्यापक के सदभ मे टिप्पणी कर रही है—"हाय! देखो तो सही निदयी, ऐसे बोलता जा रहा है, जैसे मुख्य प्रश्न नही, सम्पूण पाठयक्रम लिखवा रहा हो।"

तनिक दखो तो सही कैसा दुर्लभ एव विस्मयकारी दृश्य है। महाविद्यालय-परिसर मे एक छात्र अपने प्राध्यापक को प्रणाम कर रहा है। यह वही विकट छात्र है, जो अपने अभद्र व्यवहार के लिए कुख्यात रहा है। इसके हृदय परिवतन का तात्कालिक कारण यह है कि उस प्राध्यापक की छात्र-उपस्थिति पजिका मे इस छात्र की उपस्थिति उतनी मात्रा मे नही है, जितनी कि विश्वविद्यालय के नियमानुसार अपेक्षित है।

अब पुलिस-चौकी की ओर देखो सखि, दारोगा अपने आसन पर ऐसे निश्चिन्त हो कर सो रहा है, जैसे कया के विवाहोपरात कोई निर्धन पिता। कोई आगतुक उसको जगा कर सूचना देता है कि नगर के एक भाग मे भयकर उत्पात मचा हुआ है। तब पहले तो दारोगा आगतुक को आश्चयमिश्रित क्रोध के साथ घूरता है फिर निश्चयपूवक कहता है—"तुम्हारा मस्तिष्क तो विकृत नही हो गया है? आजकल तो परीक्षा-ऋतु चल रही है, उत्पात का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता।" कह कर वह पुन शयनावस्था को प्राप्त हो गया। तुम्हे ज्ञात है सखि, यह दारोगा उस समय तक ऐसा ही सोता रहेगा जब तक कि छात्र परीक्षा से मुक्त नही हो जाएँगे। परीक्षा ऋतु कितनी सुविधादायनी है इसके लिए।

हे सखि सुकुमारिया राजपथ पर विचरण तो अब भी करती हैं, किन्तु पहले की भाँति बन-ठन कर नही। वह देखो, एक सखि दूसरी से पूछ रही है—"क्या बात है री, तू आजकल शृगार-परिधान के प्रति बहुत

उदासीन रहने लगी है?" तब वह एक नि श्वास के साथ उत्तर देती है—"निगोडी परीक्षा ऋतु आ गई है सखि। इसमें क्या तो शृगार करूँ और क्या परिधान चुनू! छेडकर्मा ता क्या कोई घूरने वाला तक नही विचरता आजकल राजपथ पर। कई दिन से न तो मेरी वेणी झटकी गई, न मेरा दुकूल खीचा गया। बीथियो मे अब तो रुग्ण से लोग मिलते हैं। हाथो मे पाकशाला की सामग्री सभाले, सडक पर दृष्टि जमाए चलते हैं, माना रूप किरणो से रतौंधी हो जान का भय हो हाय! हाथ मे पुस्तक, अधरो मे धूम्र दण्डिका, गले में गीत वाले वे छैल देखने को मरी आखें तग्स गई हैं। मुझे तो भय है कि कही सम्पूण प्रजाति ही विलुप्त न हो गई हो, निगोडी इस परीक्षा ऋतु के मार!"

वह देखो सखि, नगर के मुख्य छविगृहपति से एक चलचित्र प्रेमी पूछ रहा है कि उसने काफी समय से किसी नवीन चलचित्र का प्रदशन क्यो नही किया? दु खी स्वर में छविगृहपति कह रहा है—'परीक्षा ऋतु चल रही है तात। ऐसे में नवीन चलचित्र का प्रदशन करना वैसा ही निरथक है जैसा कि विधवाओ की नगरी में सिन्दूर का व्यापार करना। चलचित्र-कला के पारखी एव प्रशसक आजकल निर्जीव पुस्तको की परख मे व्यस्त हैं। इनको इस काय से मुक्त हान दो, फिर एक क्या, अनेक नवीन चलचित्रो का प्रदशन किया जाएगा। छविगृह जो वतमान म रिक्त पडा रहता है, तब अपने प्राचीन वैभव को प्राप्त करेगा और तभी नवीन-चलचित्र के प्रदशन की सायकता सिद्ध होगी।"

अब तनिक उस अज्ञातयौवना षोडषी बाला को देखो सखि, जो बगल मे पुस्तकें दबाए हिरनी-सी कुलाचे भरती हुई नगर के उस भाग की ओर गमन कर रही है, जहाँ सभ्रातजनो के आवास हैं। माग मे उसको अपनी एक सहपाठिन मिल गई है जो पूछ रही है—'अरी तू किस दिशा को प्रस्थान कर रही है, यो बौरायी-सी, मरुधर की सरित-सी इठलाती हुई और यह बगल मे क्या छिपाया है तूने? अभिसार को निकली है क्या?" तब वह एक नि श्वास के साथ उत्तर देती है—"अरी कहाँ? परीक्षा ऋतु में अभिसार की कल्पना करना ता वैसा ही है जसा दोपहर की धूप मे चाँदनी की कल्पना करना मैं ता तनिक साहित्याचाय

के पास जा रही थी, पुस्तकों के महत्वपूर्ण अंशों को रेखांकित करवाने । परसों प्रश्न-पत्र जो है साहित्य का ।"

और सखि, उस कोमलांगी को तो देखो, जो मुंह फुलाए, मस्तक पर हाथ रखे विक्षिप्त-सी बैठी है । इसके कुपिता होने का कारण यह है कि परीक्षा ऋतु का आगमन जान कर इसने अपने पिता से पास बुक मंगाई थी, किंतु पुरातनपंथी पिता पूरी पुस्तक ले आया, वह भी अति विशाल आकार की । इस छात्रा का कथन है कि ऐसी विशाल पुस्तक शयन में सिराहने तो लगाई जा सकती है, किंतु अध्ययन में प्रयुक्त नहीं हो सकती ।

जिस प्रकार हे सखि, पावस-ऋतु में चारों ओर मेंढक ही मेंढक दिखाई पड़ते हैं, उसी प्रकार परीक्षा ऋतु में चहुँ ओर 'पास बुकें' ही 'पास-बुकें' दिखाई पड़ती हैं । पास बुक के सामने पुस्तक वैसी ही आकर्पणहीन हो जाती है जैसे प्रेयसी के समक्ष पत्नी । अहा ! कैसा मनोहारी दृश्य है ! निवास स्थान में, पण्य स्थल में, कार्यशाला में, वाहनों में, लोहपथगामिनी कक्ष में, जलपानगृह में, उपवन में, पथ में, वीथिका में, अट्टालिका पर, पाकशाला में, अतिथि कक्ष में, शयन कक्ष में, पूजागृह में प्रातः, दोपहर, सायं, रात्रि हर स्थल, हर समय, हर युवक-युवति के कर कमलों में पास बुक उसी प्रकार सुशोभित है जिस प्रकार कृष्ण के हाथ में सुदर्शन चक्र एवं लक्ष्मी के हाथ में कमल ।

किंतु हे सखि, इस पास-बुक के साथ विधाता ने बड़ा ही क्रूर परिहास किया है, परीक्षा ऋतु के पश्चात् इसको छात्र उसी प्रकार त्याग देता है, जिस प्रकार स्वास्थ्य लाभ के पश्चात् रोगी औषधि का त्याग देता है ।

परीक्षा ऋतु के आ जाने पर नवयुवक समुदाय राजमार्गों पण्यस्थल, वीथियों, उपवनों एवं चौराहों से उसी प्रकार अदृश्य हो गया है जिस प्रकार ऊषा काल में तारागण ।

उस नवयुवक को देखो सखि, जो शस्त्रागार से कृपाण क्रय कर रहा है । तुम्हें ज्ञात ही होगा सखि, जब से परीक्षा कक्ष में कृपाण का समावेश भयपूर्ण वातावरण का निर्माण करने के साधन के रूप में हुआ है, तब

से शस्त्र विक्रेताओ की अर्थव्यवस्था मे पर्याप्त सुधार हुआ है। तुमने वह उद्घोष तो सुना ही होगा कि अनुकरण अर्थात नकल करना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर ही रहेगे।

कैसी विडम्बना है सखि, कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी इस आर्यावर्त मे छात्र छात्राओ को नकल-कर्म छिपकर-डरकर करना पडता है, जैसे तो वह कोई चौर्यकर्म हो। तू ही कह सखि क्या एक छात्र के लिए इतनी योग्यता कम है कि वह पुस्तक मे लिखे गूढ ज्ञान को किसी पृष्ठ पर और फिर पृष्ठ से उत्तर पुस्तिका मे उतार दे वैसा का वैसा।

तो हे सखि छात्र समुदाय मे अनुकरण (नकल) की अनेक योजनाएँ विचाराधीन हैं। एक छात्रा ने अपने दुकूल पर महीन अक्षरो मे अथाह सामग्री लिख कर परिधान का प्रयोग उज्ज्वल भविष्य हेतु करने का निश्चय किया है। यदि यह सामग्री किसी कारणवश प्रयुक्त न हो सकी तो परिधान मे दुकूल का कोई औचित्य नही रह जाएगा और भविष्य मे यह छात्रा परिधान मे दुकूल का समावेश कभी नही करेगी।

सुना सखि परीक्षा ऋतु का दुष्प्रभाव केवल छात्र छात्राओ पर ही नही पुस्तकालय की पुस्तको पर भी होता है। इस सक्रमण काल मे प्रत्येक पुस्तक के शील के लिए गम्भीर सकट उत्पन्न हो जाता है। कदाचित ही कोई पुस्तक ऐसी होगी जिसको अपने कुछ पृष्ठो से हाथ न धोना पडा हो। हालांकि कुछ पुरातनपथी छात्र इस कर्म की निंदा करते हैं किंतु तनिक सोचो सखि, एक छात्र चार सौ पृष्ठो की पुस्तक मे से मात्र तरह पृष्ठ फाड कर क्या यह सिद्ध नही कर देता कि उसके शेष तीन सौ सतासी पृष्ठ व्यर्थ ह, जिनका छात्रो के लिए कोई उपयोग नही है।

अब आओ सखि हम परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करें कि हे दयानिधान युवक-युवतियो के लिए प्राणलेवा रूप धारण करती अपनी इस परीक्षा ऋतु को शीघ्र समेट, जिससे कि यह पृथ्वी पुन अपनी कीली पर आ जाए।

"वार्षिकोत्सव मे एक भाषण मुख्य अतिथि का"

प्रिय छात्रो आपने अपने महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव के लिए मुख्य अतिथि के रूप मे मुझ तुच्छ को चुना, इसके लिए मैं हृदय से आपका आभारी हू। यद्यपि आज के इस वार्षिकोत्सव मे मुख्य अतिथि होना तो और किन्ही महानुभाव को था, किन्तु आप लोगो ने पिछले अरसे मे जो प्रतिष्ठा अर्जित की है, उसको ध्यान मे रखते हुए कोई भी इज्जतदार आदमी स्वय को इस स्थिति मे नही पाता कि वह आप से रूबरू हो सके। मेरा जहा तक प्रश्न है, मैं न तो नारो से डरता हू और न घेराव से। आप लोग चाहे तो आजमा कर देख सकते है। वैसे भी इज्जत जैसा फालतू लवाजमा मैं अपने साथ नही रखता।

सयोजक महोदय ने मेरी प्रशसा मे अभी जो आलेख पढा है, उसको मेरी तरह आप भी गभीरता से न लें। दरअसल इस महाविद्यालय के प्रथम वार्षिकोत्सव मे मुख्य अतिथि की प्रशसा मे जो आलेख पढा गया था, वही आलेख आज तक पढा जाता रहा है। केवल नाम बदलता है मुख्य अतिथि का, बाकी उसकी विशेषताएँ, योग्यताएँ, रुचियाँ, व्यस्तता वगैरह सब वही रहती हैं।

मुझे यह जानकर अपार सतोष हुआ कि आप मे से अस्सी प्रतिशत होनहार बरगलाने मे न आकर कक्षाओ से दूर ही रहे और इस प्रकार गुमराह होने से बच रहे। बाकी बीस प्रतिशत जो किन्ही कारणो से झासे मे आ गए, उन अल्पसख्यको से मुझे गहन सहानुभूति है, क्योकि

ये किताबी कीड़े सौ मे से निन्यानवे कार्यों के लिए बेकार हो गए। यह तो आप भी जानते हैं कि हमारा समाज जो है, वह केवल राजपत्रित-अधिकारियों के बलबूते पर नहीं चल सकता। इसके लिए अनेक अन्य वर्गों का होना भी नितान्त आवश्यक है, जिनका कि अध्ययन से कोई खास वास्ता नही है। फिर आत्मनिर्भर बनना अथवा अपने पांवों पर खड़े होना भी एक चीज है, जिसका कि अपना महत्व है।

मैंने देखा है कि लम्पट से लम्पट आदमी भी आप पर अनुशासनहीनता का आरोप लगाता है अथवा आचरण सुधारने पर बल देता है। अनुशासनहीनता लोग जिसे कहते हैं, मैं उसे स्वतन्त्रता कहता हूँ। और फिर यह कोई आज की बात भी नही है। आप मनुस्मति पढ़ें, उसमे मनु ने गुरुकुलो मे होने वाली तथाकथित अनुशासनहीनता अथवा उदण्डता पर विस्तार से चर्चा की है। तो मित्रो, जो चीज कौटिल्य और मनु के युग से चली आ रही है, उसके लिए आप लोगो को दोषी ठहराया जाना मुझे तो किसी भी दृष्टि से तर्कसंगत प्रतीत नही होता। सांस्कृतिक-पहचान को बनाए रखने के लिए कुछ तो करना ही चाहिए न!

यहाँ मैं यह कहना भी अनुपयुक्त नही समझता कि शिक्षा और उदण्डता का साथ चोली दामन का सा है। दोनो को एक-दूसरे से पृथक् नही देखा जा सकता। जिस प्रकार अपराध समाप्त करने के लिए पुलिस विभाग को समाप्त करना आवश्यक है उसी प्रकार उदण्डता अथवा अनुशासनहीनता को समाप्त करने के लिए शिक्षा को समाप्त करना होगा। आप जानते हैं 'साइड इफेक्ट्स' तो हर चीज के होते है और उनको वहन करना ही पड़ता है। फिर यह महाविद्यालय है कोई सैनिक छावनी नही कि जिसमे अनुशासन को लेकर इतना परेशान हुआ जाए।

आचरण सुधारने का जहाँ तक प्रश्न है, इसकी आवश्यकता आपको नहीं प्राध्यापकों को है। आपके अच्छे आचरण के लिए आप स्वयं और बुरे आचरण के लिए आपके प्राध्यापक उत्तरदायी हैं। घड़ा यदि

विकृत है तो उसके लिए कुमकार उत्तरदायी है न कि मिट्टी। तो ये कुमकार अर्थात् प्राध्यापक, जिनको कि अपने अलावा शेष सारे देश का भविष्य सौंपा गया है, इनका कतव्य है कि वे आप मे विकृति न आने दें।

महाविद्यालय की सायकता का जहाँ तक प्रश्न है, मेरे विचार मे महाविद्यालय उस सस्था को कहते है, जहा आकर प्रत्येक नवयुवक को अपनी इस क्षमता का भान हो जाए कि वह किसी का क्या बिगाड सकता है। यदि आप मे से अधिकाश को अपनी इस क्षमता का एहसास हो गया तो समझो महाविद्यालय की सार्थकता सिद्ध हो गई। मुझे ज्ञात है कि आपके छात्रावास से सौ मीटर की परिधि मे से कोई सभ्रान्त व्यक्ति और पाँच सौ मीटर की परिधि मे से कोई नवयुवति आज तक नही गुजरी, इससे सिद्ध होता है कि आपने छात्रावास के स्तर को बनाये रखा है।

महाविद्यालय की कुर्सी-मेजो मे से अस्सी प्रतिशत जो टूट चुकी हैं, इसके लिए मैं आपके जोश को उतना उत्तरदायी नही समझता, जितना कि फर्नीचर सप्लाई करने वाली कम्पनी के चरित्र को। हाँ श्याम पट्टो पर, बरामदो मे, दीवारो पर आप लोगो ने जो आदर्श वाक्य लिख रखे हैं, मूत्रालयो मे जो रेखाचित्र बना छोडे हैं, ये आपकी सास्कृतिक-चेतना के परिचायक हैं। महाविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग को चाहिए कि वह शोध-सामग्री के रूप में इसका इस्तेमाल करें।

महाविद्यालय-कैण्टीन का मालिक आजकल चिकित्सालय मे अपनी शारीरिक टूट फूट का उपचार करवा रहा है। यह आपकी प्रतिष्ठा के सवथा अनुकूल है। मानव-शरीर वस्तुत क्षण भगुर है। फिर शास्त्रो मे यह भी लिखा है कि अत्यधिक धन सग्रह की प्रवृति व्यक्ति को सवनाश की ओर ले जाती है। महावीर स्वामी ने अपरिग्रह की जो शिक्षा दी थी, उसको वह नादान समझ नही पाया और फलस्वरूप इस अधोगति को प्राप्त हुआ। प्राचीन-काल मे गुरुकुलो मे छात्रो को भोजन, वस्त्र, निवास इत्यादि सभी सुविधाएँ नि शुल्क प्राप्त होती थी जबकि वतमान में द्रवपान, धूम्रपान जैसे तुच्छ व्यसन भी सशुल्क हो गए हैं।

यह अत्यंत खेद का विषय है और इसकी जितनी भर्त्सना की जाए, उतनी ही कम है।

कुछ दिनों बाद आप लोगों की परीक्षाएँ प्रारम्भ होने वाली हैं। मैं व्यक्तिगत रूप से परीक्षा-व्यवस्था का विरोधी हूँ। मेरे विचार में परीक्षा उसकी ली जाती है, जिसकी योग्यता में संदेह हो, और आपकी योग्यता में संदेह करना, विधि के विधान में संदेह करना है। दुर्भाग्यवश योग्य होते हुए भी आपको परीक्षा-प्रणाली से गुजरना पड़ता है। इतना ही नहीं आप में से बहुतों को असफल भी घोषित कर दिया जाता है। यद्यपि यह कोई आदर्श व्यवस्था नहीं है, फिर भी स्मरण रखना चाहिए कि सफलता असफलता इतनी महत्वपूर्ण बात नहीं है। वैसे सफलता-असफलता में अन्तर भी क्या है? सफल होने वाले की गलतफहमी थोड़े पहले दूर हो जाती है तो असफल होने वाले की थोड़े बाद में, बस।

पिछले कुछ बरसों से छात्र संघ के चुनाव नहीं हुए, यह गहन दुःख का विषय है। प्रजातंत्र में लोक सभा एवं विधान सभाओं के चुनाव इतने आवश्यक नहीं, जितने कि छात्र संघ के चुनाव। इसके लिए आप लोग जितने दुःखी हैं, उससे कहीं ज्यादा दुःख दूसरे लोगों को है। महाविद्यालय परिसर के बाहर एक जलपान गृहपति से थोड़ी देर पहले मेरी बातचीत हुई थी। उसने बताया कि छात्रसंघ चुनाव के दिनों में उसकी आय जो पाँच अंकों तक थी अब मात्र तीन अंकों में रह गई है। वह तो यहाँ तक कह रहा था कि यदि भविष्य में शीघ्र ही छात्र संघ के चुनाव नहीं हुए तो उसको जलपानगृह बन्द कर देना होगा।

चुनाव के दौरान आप लोग दीवारों पर जो प्रचार-सामग्री लिख देते थे, उसको साफ करने में सैकड़ों बेरोजगारों को जो रोजगार हर बरस मिलता था, वह कई बरसों से नहीं मिला, जिसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी बढ़ी है।

बहरहाल, आपने हमेशा की भांति इस बार भी हड़ताल, घेराव, बंद जुलूस, सभाएँ, प्रदर्शन इत्यादि रचनात्मक कार्यों का सम्पादन कर गौरवशाली परम्पराओं को कायम रखा, इसके लिए आप प्रशंसा

के पात्र हैं। भविष्य मे आपको क्या करना है, इसका फैसला आप स्वयं करें, बहकाने वालो से दूर रहें।

बस, इतना ही कहना है मुझे, बाकी आप सब समझदार हैं ही। अन्त मे मैं पुन आपको धन्यवाद देता हूँ कि आपने मुझे यह सम्मान देकर कृतार्थ किया। धन्यवाद।

महगाई की अफवाह के विरुद्ध

मेरे गौरवशाली देश के धैर्यशाली नागरिको, मुझे महगाई के बारे मे फैली अफवाहो के ऊपर दो शब्द बोलने के लिए यहाँ बुलाया गया है। मैं अर्थशास्त्री तो नही हूँ। पर इस सम्बन्ध मे सभी अर्थशास्त्रियो से अधिक जानता हूँ।

सबसे पहले तो मैं आयोजको को इतने सुन्दर प्रबन्ध के लिए धन्यवाद देता हूँ। महिलाओ के लिए मच के निकट बैठने की जो व्यवस्था की गई है, उससे मैं काफी प्रभावित हुआ। आप सब लोग शांति के साथ बैठकर ध्यान से मेरी बात को सुन रहे हैं। इससे पता चलता है कि मैं एक सभ्य शहर मे आया हूँ, जहाँ के लोग विद्वानो का आदर करना जानते हैं।

मित्रो, समय कम है और बातें अधिक इसलिए अब मैं सिर्फ महगाई के बारे मे जो सच्चाई है, वही बयान करूँगा।

समाज का एक वर्ग विशेष हमेशा महगाई महगाई चिल्लाता रहा है। मैं आपको साफ तौर पर बता देना चाहता हूँ कि यह समाज विरोधी तत्वो का काम है। मैं आपसे ही पूछता हूँ—बताइए कहाँ है महगाई ? यदि वास्तव मे महगाई की वजह से लोगो का जीना मुश्किल है तो सिनेमा हाल पर टिकटों की कालाबाजारी क्या होती है विदेशी वस्तुएँ मुँह माँगे दामों पर क्यो खरीदी जा रही हैं शराब इतनी क्या बिकती है, दर्जियो की दुकानों पर भीड क्यो लगी रहती है, एक कनिष्ठ लिपिक अपनी महबूबा के साथ नाश्ता कर होटल के बैरे को पाँच रुपए की टिप कैसे देता है, एक मामूली-सी स्टेनो सप्ताह मे आठ साड़ियाँ कहाँ से पहन कर आती है ?

मैं जानता हूँ आप लोगो के पास इन सवालो का कोई जवाब नही है। मैं आपको अपनी बात बताऊँ—मुझे बीस बरस हो गए गृहस्थी चलाते, लेकिन आज दिन तक कभी महगाई से पाला नही पडा। अगर महगाई की अफवाह मे कुछ हकीकत है तो आप उसे मेरे सामने लाइए, ताकि मैं आप लोगो की शिकायत की समीक्षा कर सकू।

मैं इस बात से इकार नही करता कि पिछले कुछ समय मे कुछ वस्तुओ के भाव बढे हैं, पर इसे महगाई नही कहा जा सकता। बढने का जहाँ तक सवाल है, पिछले अरसे मे हत्याएँ बढी हैं, आत्म हत्याएँ बढी है, बलात्कार बढे हैं, चोरी और डकैती बढी हैं, रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार बढा है, फिर भाव क्यो नही बढेंगे।

इसके बावजूद भी यदि आप अफवाहो पर ध्यान देकर महगाई की शिकायत करेंगे तो इससे हमारी योजनाओ पर बुरा असर पडेगा। आप यह न समझें कि इसके लिए कुछ नही किया जा रहा। पिछले बरसो मे जो कीमतें बढी हैं उनको कम करने का प्रयास किया जा रहा है। इस सिलसिले मे कुछ वस्तुओ के भाव न कवल स्थिर हुए हैं, बल्कि कम भी हुए है।

इस तरह की चीजें केवल पाच सात है, जिनके भाव स्थिर नही हो पाए। इनके भावो को कोई भी उस समय तक नही रोक सकता जब तक कि इनका प्रयोग कम मात्रा मे नही किया जायेगा। ये चीजें हैं—अनाज, वस्त्र, खाद्य-तेल, पेट्रोलियम पदार्थ और एकाध ऐसी ही चीजें।

अब आप जरा गौर से सुनिए। मैं आपको उन दूसरी वस्तुओ के बारे मे बताता हूँ, जिनके भाव न केवल स्थिर हुए हैं, बल्कि कम भी हुए है। विश्वसनीय सूत्रो के अनुसार 'बादाम और इलायची' के भावो मे दस से सौलह रुपए प्रति किलो की गिरावट आई है। और जनता है कि गेहूँ पर पचास पैसे मात्र बढ जाने पर रोने लगती है। यह ठीक नही है। 'लौंग' के व्यापारियो की सूचना के अनुसार वे आठ रुपए प्रति किलो पर कम करने को राजी हो गए हैं। इसके अलावा काजू, किशमिश, अखरोट, पिस्ता और दूसरे मेवो के भावो मे भी कुछ प्रतिशत कमी होने की सभावना है।

चावल के भाव नही गिरे तो क्या, 'च्यवनप्राश' के भाव स्थिर कर दिए गए हैं। आप आगामी एक बरस तक च्यवन प्राश उसी भाव से खरीद सकेंगे, जिस भाव से वह आज मिल रहा है।

फल और सब्जियो का जहाँ तक सवाल है। केले, अमरूद एव आलू, गोभी जैसी चीजो के भावा मे कमी करना किसानो के हित में अच्छा नही होता फिर भी इस बात का प्रयास किया जा रहा है कि अगूर, अनार जैसे फलो के भावो मे अधिक बढोतरी न हो।

छोटे ढाबो और होटलो मे भोजन के भाव कम करने की कोई आवश्यकता नही है। इसके दो कारण है—पहला तो यह कि आपके शहर के बहुत से लोग यह व्यवसाय करते हैं। दूसरा कारण यह है कि भोजन पर जितना अधिक व्यय होगा स्वास्थ्य के लिए उतना ही अच्छा होगा। हमारे बुजुर्ग भी कहते हैं कि खाने से ही अगर कगाली आती है तो आने दें। लेकिन हाँ फाइव स्टार होटलो मे भोजन मे साढे पाँच और कमरो के किराए में चार प्रतिशत की कमी तुरत कर दी जाएगी। अगली बार आप जब इन होटलो मे जायेंगे तो इसका लाभ आप स्वय अनुभव करेंगे।

भाइयो, यात्रा का जहाँ तक प्रश्न है, बसो और रेलो के किराए मे कमी करना परिवहन एव रेलवे विभाग के कर्मचारियो के साथ अन्याय होगा। लेकिन अब हवाई-जहाज के किराए मे बढोत्तरी नही होने दी जायेगी। एक बात मैं बताना भूल गया। रेलो मे मरने वालो व बसो मे होने वाली दुर्घटनाओ मे मरने वालो के लिए बीमा योजना शुरू की गई है। इसके मुताबिक मृतक के परिवार को एक हजार से पाँच हजार रुपए तक मुआवजे के रूप में दिए जायेगे। मैं चाहता हूँ कि आप इस योजना का अधिक से अधिक लाभ उठायें।

साथियो, मेरे पास समय बहुत कम है, अन्यथा मैं आपको और भी बहुत-सी बातें बताता, जिनको सुनकर आप महगाई की अफवाह के बारे मे नए सिरे से सोचते। फिर भी मुझे विश्वास है—आप इस तथ्य को अच्छी तरह समझ गए होंगे कि कुछ वस्तुओ के भाव गिरे हैं, कुछ के स्थिर किए जा रहे हैं। बाकी जो चीजें हैं उनके भावो मे कमी करना

आपके हाथ मे है। इसके लिए एक ही रास्ता है और वह यह कि आप इनका उपयोग कम करें, हो सके तो बिल्कुल ही ब द कर दें।

वैसे यह कोई मुश्किल काम नहीं है। आप यह क्यो भूल जाते हैं कि आप महाराणा प्रताप के वशज हैं। उ ही महाराणा प्रताप के जिनके राजकुमार गेहूँ की बजाए घास की रोटी खाया करते थे। इतिहास गवाह है कि उनके ऐसा करने से गेहूँ के भाव कितने गिर गए थे उन दिनो।

मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप घास की रोटी खायें लेकिन इससे मिलता जुलता प्रयास तो कर ही सकते हैं। महगाई को रोकने के लिए यह बेहद जरूरी है। अ त में मै आपसे यही कहूँगा कि वस्तुओ का उपयोग कम से कम करें। ऐसा करने से शुरू मे आपको कुछ असुविधा हो सकती है। पर आगे की सुविधा के लिए यह बहुत आवश्यक है। सहन करना और धीरज रखना, यह हमारी सारी सभ्यता और सस्कृति का सार है। इस बात को हमेशा याद रखियेगा। ध यवाद।

"रिहर्सल : गरीबी मिटाने की"

उनका काफिला आकर ठीक मेरे घर के सामने रुका। गाडी से उतरकर फाइल कागज सभाले वे मेरे निकट आए और नमस्कार-वगैरह करके खडे हो गए। औपचारिकता के लिहाज से मुझे उनसे कहना था—बैठिए, पर नही कह सका, क्योकि मेरे पास एक ही शीर्ण-जीर्ण कुर्सी थी, जिस पर प्राचीन काल म कभी कैनिग हुई होगी, फिलहाल तो पाइपो मे एक तख्ती फसी हुई थी, जो मेरी तकनीकी क्षमता का एक बेमिसाल नमूना थी। उस पर भी बैठा था स्वय मैं और व खडे थे। वैसे मैं उन सबको पहचानता था। उनमे एक बडा अधिकारी, दो छोटे अधिकारी, दो बाबू, एक लेखाकार, एक रोकडिया और तीन चपरासी थे।

बडे अधिकारी ने क्रमश छोटे अधिकारी को, उसने लेखाकार को, लेखाकार ने बाबू को और बाबू ने वरिष्ठ चपरासी को देखा, वरिष्ठ-चपरासी ने जब काफी देर तक कनिष्ठ चपरासियो को घूरा तो वे दौडे गए और जीप मे से आठ-सात फोल्डिग कुर्सियाँ लाकर वहाँ बिछा दीं। मेरी कुर्सी उन कुर्सियो क समक्ष लज्जा स जमीन मे धसने लगी, बादामों के बीच मे कोई मूगफली का छिलका जिस प्रकार सकुचाता है वसे ही मेरे इद गिद बैठकर वे मुझे हसरत से निहारन लगे शायद वे सोच रह थे कि कहा से शुरू किया जाए।

मेरी दृष्टि कुछ सहमी सी कुछ प्रश्नवाचक-सी बनी उनके पदापण का उद्देश्य जानना चाह रही थी।

' देखिए बो क्या है कि हम जो हैं न वो आपकी गरीबी दूर करने आए हैं—आप अगर बुरा न मानें और इजाजत दें तो।" बडे अधिकारी

ने सकुचाते हुए इस तरह से कहा जैसे मेरी तरफ से इस प्रस्ताव के जोरदार विरोध की प्रबल आशका हो।

"लेकिन मैं गरीब हूँ, यह आपसे किसने कहा ?"

"वाह-साहब वाह ! बहुत खूब !" इस बार छोटे अधिकारी बोले—यही तो है हमारा इडियन कल्चर, तीन दिन के भूखे भी ऐसी डकार लेते हैं जैसे अभी-अभी छत्तीस व्यजन खाकर उठे हो। जिन्दगी मे कभी नारगी तक नही देखी होती, फिर भी कोई अगूर खाने का आग्रह करे तो पूछते हैं—छिले हुए नहीं हैं क्या ?"

"लेकिन मेरी गरीबी मिटाने की जरूरत क्या है आखिर ?" मैंने दूसरा सवाल उठाया।

"जरूरत है जनाब, बहुत सख्त जरूरत है। इक्कीसवी शताब्दी मे हम सिर्फ उन्ही लोगो को ले जाना चाहेंगे, जो गरीब न हो" बडे अधिकारी ने भावी योजना का परिचय दिया।

"तो मुझे बीसवी में ही छोड देना, सभी इक्कीसवी सदी मे जाकर क्या करेंगे।"

"अरे नही सहाब, छोडने के लिए तो और बहुत भरे पडे हैं, वो क्या हैं कि आपके बिना वहाँ मजा नही आयेगा।" वे बोले।

"यह बात है।"

"जी हाँ" फिर वे लहजा बदलकर बोले—"देखिए अब आपसे क्या छिपाना, दरअसल बात यह है कि आज तो हम सिर्फ रिहसल करने आए हैं गरीबी हटाने की। खुदा न खास्ता अगर कभी सचमुच गरीबी दूर करन की नौबत आ जाए तो यह अनुभव हमारे बहुत काम आ सकता है।"

"लेकिन छलनी मे छिद्रो की क्या कमी है। मेरा मतलब और भी तो बहुत से गरीब हैं फिर मुझे ही यह सम्मान प्रदान करने की वजह ?" मैंने फिर पूछा।

- वे कहने लगे—"इस रिहसल के लिए हमे किसी ऐसे गरीब का चयन करना था, जो गरीब होने के साथ साथ कुछ पढा-लिखा भी हो, ताकि हमारी बात को समझ सके, वरना आप तो जानते ही हैं

हिंदुस्तानी जनता को कि जिसे समझाओ कुछ और समझती कुछ है ।"

"तो इसके लिए मुझे क्या करना होगा ?" सकारात्मक लहजे में मैंने सहमति व्यक्त की तो वे प्रसन्न होकर बोले—"आप अपनी गरीबी से सम्बन्धित समस्याएँ बताइए, आपको किन चीजों का अभाव है, यह बताइए, हम अभी और इसी वक्त समाधान करने की कोशिश करेंगे। समाधान हो जाने के बाद आप हमें लिखकर दीजिएगा कि आपकी गरीबी दूर हो गई ।"

"लिखकर क्यों ?"

"यह तो बस यूं ही कागजी खानापूर्ति के लिए अब आप अपने अभाव बताइए ।"

कुछ सोचकर मैंने कहा—"अब यही देखिए न कि मेरे पास बैठने के लिए ढंग की कुर्सी तक नहीं है ।"

"इनमें से चार कुर्सियां आपकी हुईं, बस ! लेकिन रसीद में आपको आठ लिखनी होंगी।" कहकर वे मुस्कुराए, फिल्मी खलनायक की तरह ।

"आठ क्यों ?" मैंने आपत्ति की ।

"ओफ्फो, हम इंडियन्स की यही तो बुरी आदत है कि बात-बात में "क्यों" लगाते हैं। चार कुर्सियाँ मुफ्त में मिल रही हैं, यह नहीं सोचते आप ?"

"ठीक है"—"मैंने कहा "लेकिन ये तो किसी टेण्ट-हाउस की लगती हैं। अगर वह आ गया तो कुर्सियों के साथ किराया भी देना पड़ेगा मुझे।"

वे बोले—"कुर्सियाँ हैं तो किसी टैण्ट-हाउस की ही होंगी हमने कोई फर्नीचर-हाउस तो खोला हुआ है नहीं हम आपको खानापूर्ति करके देंगे बाकायदा, फिर आपको आम खाने से मतलब होना चाहिए, पेड़ गिनने से नहीं ।" उनके स्वर में एक प्रकार का आवेश-सा आ गया था । कुछ संयत होकर बोले—"दूसरी समस्या बताइए आप।"

मैंने बताया—"पानी की समस्या है, मुहल्ले के ज्यादातर नलों में

पानी आता ही नहीं।"

वे कहने लगे—"यह तो राष्ट्रव्यापी समस्या है। हमारा देश इतना धनवान तो है नहीं कि पाइप और पानी दोनों की व्यवस्था हो सके। दरअसल पाइप बिछाने में ही इतना खर्चा हो जाता है कि पानी के इतजाम के लिए बजट ही नहीं बचता। फिर भी हम आपको आज पानी का एक टैंकर उपलब्ध करवा देंगे। आप जी भर के पी लीजिए, नहा लीजिए, अपनी टकी, बाल्टी, घडा-वगैरह भर लीजिए बल्कि मैं तो कहूँगा कि लोटा, गिलास, कटोरी, चम्मच सब भर लीजिए।"

"उसके समाप्त हो जाने के बाद?" मैंने पूछा।

"बाद की चिंता छोडिए, आप सिर्फ आज की बात करिए और फिर यह तो रिहर्सल मात्र है, कोई सचमुच की गरीबी हटाओ योजना थोडे ही है अगली समस्या बताइए।"

मैंने कहा—"मेरे दो बच्चे हैं। दिन भर कचे खेलते हैं, गालियाँ सीखते हैं, झगडते हैं उनको स्कूल नही भेज सकता क्योंकि फीस और किताबो के लिए "

"कहाँ हैं बच्चे बुलवाइए उनको," उन्होंने कहा।

मैंने बच्चो को बुलाया, वे आए और आँखो मे कौतुहल का भाव लिए वहाँ खडे हो गए। चपरासी से मुखातिब होते हुए अधिकारी बोले—"इन बच्चो को ले जाकर किसी नजदीकी स्कूल मे बिठा आओ, कहना साहब ने कहा है कि आज-आज इनको स्कूल मे बैठने दिया जाए।"

चपरासी ने बच्चो के हाथ थामे, बच्चो ने मेरी ओर देखकर अनुमति चाही, मैंने उनको सकेत किया कि चले जाओ और वे चले गए।

"और क्या दिक्कत है आपको?" उनका प्रश्न।

मैं बोला—"मेरा यह घर बरसात मे टपकता है, आगन तालाब बन जाता है। हम लोग तो परेशान होते ही हैं हमारे यहाँ जो दो-तीन मुर्गियाँ होती है, वे हर बरसात मे खुदा को प्यारी हो जाती हैं।"

धैर्य के साथ मेरी समस्या सुनकर वे कहने लगे—"बरसात का मौसम तो अभी बहुत दूर है, बरसात के मौसम मे बरसात भी हो, यह भी कोई जरूरी नहीं।"

"जी हां, लेकिन आज भी बरसात हो सकती है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता ?" मैंने तर्क किया।

वे बोले—"ठीक है हम आपको एक तिरपाल दिए देते हैं और हां मुर्गियों का जहाँ तक सवाल है तो वो आप बरसात में रखते ही क्या हैं ? आपका आंगन यदि सचमुच तालाब बन जाता है तो आपको बतख, मछली वगैरह पालने चाहिए खैर, कोई और समस्या ?"

'समस्या तो कोई खास नहीं, बस एक छोटी-सी है रोटी की," मेरे कहने पर उन्होंने चपरासी से कहकर जीप में से दो बिस्कुट के पैकेट और सूखे दूध का एक डिब्बा मंगाकर मुझे दिए, डिब्बे की साइज इतनी छोटी भी हो सकती है यह मैंने आज ही जाना, फिर भी मैंने कहा—"भूखे आदमी को बिस्किट ?"

"और नहीं तो क्या चिकन !" वे बोले।

"वह तो खैर पचेगा ही नहीं मुझे, लेकिन ये बिस्किट वगैरह तो पेट भरे लोगों के कुतरने की चीजें हैं।"

उन्होंने कहा—"आप भी थोड़ी देर के लिए ऐसा ही समझ लीजिए कि आप लंच ले चुके हैं और अब पानी पीने के पहले ये बिस्किट कुतर रहे हैं, आपको पता नहीं यह पौष्टिक-आहार है।"

"जी हाँ" मैंने कहा। मैं सोच रहा था—क्या विडम्बना है यह भी कि जो आहार होता है वह पौष्टिक नहीं होता और जो पौष्टिक होता है वह आहार नहीं होता।

"और कोई अभाव है आपको ?" वे पूछ रहे थे।

"नहीं' मैंने कहा—"हमेशा का तो और कोई अभाव नहीं, लेकिन कई बार बच्चे जब बीमार हो जाते हैं तो दवाई नहीं दिलवा पाता, सरकारी अस्पताल तो यहाँ है नहीं और "

मेरी बात पूरी सुनने से पूर्व ही उन्होंने चपरासी को आदेश देकर जीप से दवाइयों का एक डिब्बा मंगवाया, उन्होंने डिब्बे में से चार पाँच तरह की पचासेक गोलियाँ निकाल कर मुझे थमा दी और बोले—"अब कोई बीमार पड़ जाए तो दो-चार गोलियाँ खिला देना।"

"इनमें से कौन-सी गोली किस बीमारी की है ?" गोलियो को लेकर उलट-पुलट कर देखते हुए मैंन पूछा।

उन्होंने बताया—"ये सब 'कॉमन टेब्लेट्स' हैं, कोई सी भी दे देना।"

"इनमे से कुछ की तो 'इक्सपायड-डेट' भी निकल चुकी है," मैंन शका व्यक्त की।

"इसीलिए तो ये ज्यादा कारगर है, चार का काम एक ही कर देती है" उन्होंने मुझे सवथा नवीन जानकारी दी।

इसके बाद उन्होंन मुझे नौ रुपए साठ पैसे नकद दिए, जो पता नही कौन-सी वेतन शृखला के अन्तगत एक दिन के महगाई भत्ते के बराबर राशि थी। उन्होंने बताया कि यह आकस्मिक-व्यय राशि है। फिर पूछा—"अब दूर हो गई आपकी गरीबी ?"

मेरे सहमत हो जाने पर उन्होंने कुछ कागजो पर मुझसे दस्तखत करवाए और चलने की तैयारी करने लगे। बोले—"शाम तक पानी का टैंकर आ जायेगा और हा बच्चो को ले आइएगा स्कूल से।"

"लेकिन किस स्कूल से ?" मैंने पूछा।

इस पर उन्होंने उस चपरासी को तलब किया जो बच्चो को लेकर गया था। किन्तु वह नदारद था। वरिष्ठ चपरासी ने अधिकारी को समझाया कि वह तो अब नही आयेगा, क्योकि उसका घर इसी मुहल्ले मे है, और वैसे भी अब आफिस ऑवस पूरे होने मे सिफ दो ही ऑवस रह गए हैं।

"आप देख लीजिएगा प्लीज, अच्छा थैंक्यू वैरी मच," उन्होंने मुझ से कहा और जाकर जीप मे विराजमान हो गए। फिर जीप चल पडी।

इस समय मैं महसूस कर रहा था जैसे गरीबी की सीमा-रेखा जो कल तक मेरे सर से काफी ऊपर थी यकायक पांवो के नीचे आ गई है, कितनी देर के लिए ? यह मुझे नही सोचना था फिलहाल।

किसान, कीड़े और अकाल-विशेषज्ञ

इस बरस फिर अकाल पडा। अकाल इस प्रदेश के लिए कोई नई बात नही रही है, पिछले कई बरसो से इतिहास अपने आपको दोहराता चला आ रहा है। हर बरस रेडियो से समाचार आता रहा कि "इस बार भरपूर फसल होने की उम्मीद है," और हर बार अकाल पड़ता रहा बाकायदा। मतलब यह कि अकाल यहाँ आम बात हो गई है, किसी बरस नही पडा तो वह खास बात होगी, और यह खास बात कुछेक के लिए काफी कष्टप्रद होगी। अकाल की स्थिति का सदुपयोग करते हुए हमने पिछले बरसो में अनेक अकाल-विशेषज्ञ तैयार किए हैं, जो अकाल का अध्ययन करने मे अत्यंत प्रवीण हैं। कुछ अकाल की स्थिति का जायजा लेने मे पारगत हैं तो कुछ अकाल राहत कार्यों का सम्पादन करने मे माहिर हैं। कुछ अकाल राहत के लिए बजट बनाने मे दक्ष हैं तो कुछ उस बजट को ठिकाने लगाने मे पहले अकाल के लिए ये विशेषज्ञ जरूरी थे और अब इन विशेषज्ञो के लिए अकाल जरूरी हो गया है।

उल्लेखनीय है कि ये विशेषज्ञ हमने स्वय तैयार किए हैं, रूस अथवा अमेरिका से आयात नही किए। किसानों तथा उनके परिवारो पर अकाल का क्या प्रभाव पडा है? इस सदर्भ मे ये विशेषज्ञ किसानो से अधिक जानकारी रखते हैं। किसान तो अनपढ़ होते हैं, उनको क्या पता कि अकाल से क्या नुकसान हुआ है उनको। किसी क्षेत्र मे अकाल पडा है अथवा नही, इसका फसला सिर्फ ये विशेषज्ञ ही कर सकते हैं। सम्बन्धित क्षेत्र के निवासी नही। इनका निर्णय मानना ही होगा, यह पहले ही से तय होता है।

कोई इनसे कहे—हमारे यहाँ तो फसल खूब हुई है अकाल नही है,

तब ये कह सकते हैं—चुप रहो ! फसल और अकाल का सम्बन्ध तुम क्या जानो। और फिर फसल हुई भी है तो इसका यह मतलब थोड़े ही है कि अकाल नहीं पड़ा ! अकाल पड़ा है और निश्चित रूप से पड़ा है।

कोई कहे—हमारे यहाँ भयकर अकाल है, एक दाना तक पैदा नहीं हुआ। तब ये कह सकते हैं—फसल नही होने का मतलब अकाल नहीं हुआ करता मूर्खो ! हो सकता है तुमने फसल बोई ही न हो, तो फिर उगेगी किधर से ? हैं ! ! पहले तुम यह सिद्ध करो कि खेत मे बीज डाला था, और वह उत्तम किस्म का था। खाद डाला था और उसका ऐवरेज सही था, पानी भरपूर दिया था इसके बाद बात करो। इन विशेषज्ञो की मर्जी हो तो ये किसी क्षेत्र को भी अकाल पीडित घोषित कर सकते हैं, जहाँ कृषि जैसी चीज का कोई अस्तित्व कभी न रहा हो।

अकाल का कोई कर भी क्या सकता है ? यह तो प्राकृतिक प्रकोप है। सरकार का हुक्म कोई बादलो पर थोडे ही चलता है कि मर्जी न मर्जी बरसना ही पडे उनको। सरकार बेचारी का हुक्म तो उसके वे अधिकारी-कमचारी ही नही मानते, जो उससे वेतन भत्ते प्राप्त करते है। बादल तो फिर बादल है, उनका क्या ? बरसें तो बरसें, नही तो नही।

अकाल-पीडितो की सहायता करना सरकार अपना कत्तव्य समझती है लेकिन उससे पहले यह जानना निहायत जरूरी होता है कि कौन अकाल से पीडित है और कौन नही ? यह काय अकाल विशेषज्ञो के जिम्मे होता है।

तो इस बार भी अकाल विशेषज्ञो का एक दल तैयार किया गया। उसको स्टाफ, स्टेशनरी, व्हीकल और बजट से सुसज्जित कर यह दरियाफ्त करने जिम्मेदारी सौपी गई कि प्रदेश मे अकाल की क्या स्थिति है ? अकाल पडा है अथवा नही पडा ? पडा है तो क्यो पडा और नहीं पडा तो क्यो नहीं पडा ? जहाँ पडना चाहिए था वही पडा अथवा कही और पडा ? अकाल का दुष्प्रभाव किसानो पर अधिक हुआ है अथवा ठेकेदारो पर ? किसको मदद की जरूरत है और किसको नही ? कहाँ क्या किया जाना चाहिए और क्या नही ? सक्षेप में अकाल से

सम्बन्धित प्रत्येक पहलू का अध्ययन कर रिपोर्ट तैयार करने का काम इस विशेषज्ञों के दल को सौंपा गया।

। अकाल विशेषज्ञों ने कुछ समय के लिए राष्ट्रहित में व्यक्तिगत हितों का त्याग किया, वातानुकूलित भवनों का त्याग किया, सुन्दर एवं आधुनिक पत्नियों का त्याग किया, स्कॉच तथा चिकन का त्याग किया और चल पड़े अकाल की स्थिति का जायजा लेने।

लगभग चार महीने बाद अकाल विशेषज्ञों ने अकाल के संदर्भ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जो संक्षेप में इस प्रकार थी—

प्रदेश के अधिकांश भागों में अकाल का असर हुआ है। कहीं-कहीं तो स्थिति इतनी खराब है कि अनाज का एक दाना तक पैदा नहीं हुआ। इस हालत में किसान तो जैसे-तैसे काम चला लेंगे मर-पच के, क्योंकि पिछले अरसे में उन्होंने अपने आप में अकाल प्रतिरोधक क्षमता पर्याप्त मात्रा में पैदा कर ली है। लेकिन उन कीड़ों के लिए गम्भीर संकट पैदा हो गया है, जो अपना भोजन इन फसलों से प्राप्त करते थे। इन कीड़ों ने किसानों के खेतों में यह सोचकर अपने घर बनाए थे कि फसल भरपूर मात्रा में होगी। लेकिन ऐसा नहीं होने से इनके अस्तित्व के लिए गम्भीर संकट उत्पन्न हो गया है।

हम समझते हैं कि हमारे लिए ये कीड़े किसानों से ज्यादा जरूरी हैं, इसलिए इनके लिए उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। हमारा सुझाव है कि हमारे पास आपातकालीन स्थिति के लिए अनाज के जो सुरक्षित गोदाम हैं, उनको खोल दिया जाए। तुरन्त एक नया विभाग बनाकर उसको यह काम सौंपा जाए कि वह तमाम कीड़ों को खेतों से लाकर इन गोदामों में छोड़ दें। इसके बाद इनको तब तक वहीं रखा जाए तब तक कि किसान अगली फसल न उठा लें। किसानों से कहा जाए कि वे जितनी जल्दी हो सके अगली फसल उगावें। गेहूँ नहीं तो बाजरा, बाजरा नहीं तो चना, मकई, जौ, ज्वार कुछ भी उगावें लेकिन उगावें जरूर। इसके बाद जब खेतों में फसलें पकने लगें तो इन कीड़ों को ले जाकर अपने-अपने खेतों में छोड़ दिया जाए। लाने-ले जाने में यदि किसी कीड़े

को किसी प्रकार की क्षति पहुँचे तो उसकी भरपाई राज्य की तरफ से की जाए।

एक सुझाव यह भी है कि कीडो को लाने-ले जाने वाले विभाग को स्थाई कर दिया जाए। इससे लाभ यह होगा कि इस क्षेत्र मे भी हमारे यहाँ कुछ विशेषज्ञ तैयार हो सकेंगे। हमे समझ लेना चाहिए कि कीडो की सेवा ही राष्ट्र और समाज की सेवा है।

बडे अधिकारियो न इस रिपोट को पढा और फिर छोटे अधिकारियो को प्रेषित कर दिया। इस आदश के साथ कि "इसकी अनुपालना की जाए।"

मरीज मरते रहे ज्यो-ज्यो दवा की

मनुष्य के नश्वर जीवन मे घर और श्मशान के बीच की जो कड़ी है, उसे अस्पताल कहा जाता है। जीवन चक्र के अन्तिम-काल में मनुष्य अस्वस्थ होकर घर से अस्ताल और फिर अस्पताल से श्मशान को जाता है। यही नियति है।

अस्पताल के अन्दर नर्से होती हैं, चपरासी होते हैं, मशीनें होती हैं, औषधियाँ होती हैं, बिस्तर होते हैं और हाँ डाक्टर भी होते हैं। नर्सें या तो किसी को झिडकती रहती हैं या मुस्कुराती रहती हैं, चपरासी बीडी फूंकते रहते हैं, मशीनें 'आउट आफ आडर' रहती हैं, औषधियाँ 'आउट आफ स्टॉक' होती हैं, बिस्तर भरे रहते हैं और डाक्टर एकदम गम्भीर मुद्रा मे बैठे रहते हैं।

अस्पताल के कायदे के मुताबिक जब कोई रोगी पहली बार किसी डाक्टर के पास जाता है तो डाक्टर तुरन्त ही पाँच-सात औषधियाँ लिख कर उसको पर्ची थमा देता है और कहता है—"ये दवाईयाँ लेकर देखो, एक सप्ताह बाद आकर फिर दिखा जाना।"

एक सप्ताह बाद यदि रोगी स्वस्थ न हो तो कोई बात नही, डाक्टर दूसरी दवाइयाँ लिख देता है। लेकिन यदि रोगी ठीक होने लगे तो यह डाक्टर के लिए परेशानी का कारण बन जाता है। क्योंकि तब डाक्टर के लिए यह जानना लगभग जरूरी हो जाता है कि रोगी ठीक कैसे हो रहा है और किस औषधि से हो रहा है?

इस समस्या के समाधान के सन्दर्भ मे डाक्टर पूर्वलिखित औषधिया मे से एक-एक को बन्द करके देखता है। बन्द की हुई औषधि से यदि रोगी पुन अस्वस्थता की ओर न बढ़े तो इसका अर्थ यह हुआ कि रोगी

उस औषधि से ठीक नहीं हो रहा था इस सन्दर्भ मे आगे चल कर जिस औषधि को बन्द करने से रोगी की स्थिति पुन: विगडने लगे, वही उसके रोग की असली दवा है, ऐसा डाक्टर समझ लेता है।

सब अस्पतालो मे नहीं तो खास-खास अस्पतालो मे दो प्रकार के 'वाड' होते हैं—एक 'जनरल वाड' और दूसरा 'इमरजेन्सी-वार्ड।' इनमे एकमात्र अन्तर यही है कि इमरजेन्सी-वार्ड मे रोगी फटाफट और जनरल वाड मे धीरे-धीरे मरता है। यही कारण है कि आजकल अधिकाश समझदार लोग अपने रिश्तेदारो को इमरजेन्सी-वाड मे ले जाना ही अधिक पसद करते हैं।

अस्पताल के नियमो के अनुसार कोई मरीज मर गया अथवा जीवित अवस्था मे है ? इसका निर्णय करने का अधिकार सम्बन्धित डाक्टर को होता है। स्वय मरीज को नही। 'काल करे सो आज कर आज करे सो अब' वाली सीख के पेशेनजर डाक्टर चाहे तो ऐसे जीवित रोगी को भी मृत घोषित कर मुर्दाखाने मे भिजवा सकता है, जिसके निकट-भविष्य मे मरने की प्रबल सम्भावना हो।

अस्पताल मे 'चैकअप' के साथ जो सिलसिला शुरू होता है, वह 'पोस्टमाटम' पर पहुँच कर ही खत्म होता है। 'पोस्टमाटम' के दौरान डाक्टर लोग रोगी के साथ जो कुछ करते हैं, वह तो खैर कहने की बात नही। लेकिन 'चैकअप' के दौरान ही डाक्टर रोगी पर ऐसी हरकतो के लिए दवाव डालता है, जो किसी भी सूरत में सभ्रान्त किस्म की नही कही जा सकती। जैसे डाक्टर कहता है—मुँह खोलो—जीभ निकालो—और निकालो—जोर-जोर से साँस लो—खाँसो—हिलो मत—शरीर को ढीला छोड दो एकदम—इत्यादि।

किसी के साथ बलात्कार हुआ है या नही ? यह भी सिर्फ डाक्टर ही बता सकता है, वादी अथवा प्रतिवादी-पक्ष नही। डाक्टर इस मामले मे इतने अधिकार के साथ जानकारी देता है कि जैसे तो स्वय उसी ने यह कार्य किया हो। अस्पताल की ओर से इस गोपनीय-कार्यवाही की जो सारगर्भित रिपोट प्रस्तुत की जाती है, उससे आम आदमी को

शरीर-विज्ञान और सामान्य ज्ञान दोनो के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

अस्पताल मे एक चीरफाड-कक्ष होता है, जिसे 'ऑपरेशन थियेटर' या 'आपरेशन-रूम' कहा जाता है। इसके दरवाजे पर पहुँच कर प्रत्येक रोगी नास्तिक से आस्तिक बन जाता है और इस लोक को भूल कर परलोक के बारे मे सोचने लगता है। इसमे मुँह पर नकाब और हाथो मे दस्ताने चढाए डाक्टर नर्सों का एक दल होता है, जो अचानक मरीज पर टूट पडता है।

कई बार डाक्टरो को किसी का पेट चीरने मे इतना मजा आता है कि वे सोचते हैं कि इसका पेट एक बार और चीरा जाए तो कैसा रहे। ऐसा करने के लिए वे मरीज के पट में कैंची अथवा तौलिया छोड देते हैं लिहाजा मरीज को फिर डाक्टरो की शरण मे आना पडता है। तब वे अपनी इच्छा पूरी करते हैं। वह दिन दूर नही जब यह खबर सुनने को मिलेगी कि एक मरीज ने ऑपरेशन के बाद शिकायत की कि उसका ऐसा लगता है जैसे उसके पेट मे कोई रस्सी कूद रहा है। दोबारा ऑपरेशन करने पर पता चला कि उसके पट मे एक नस रह गई थी। पता चला है कि यह नस आवास समस्या को लेकर काफी परेशान थी।

इस तरह की खबरें कई बार सुनने को मिलती हैं कि अमुक आदमी को अस्पताल ले जाया जा रहा था कि उसने रास्ते मे ही दम तोड दिया। ऐसी जल्दबाजी करने वाले मतक को अस्पताल मे बडे ध्यान से देखा जाता है। यह जानने का प्रयास किया जाता है कि इसको ऐसी क्या जल्दी थी, जो रास्ते मे ही मर लिया बेवकूफ की तरह। मरना तो खैर था ही लेकिन अस्पताल मे आकर मरता शान से। फिर अस्पताल वालो को भी यह मलाल नही रहता कि वे इस 'केस' में कोई सक्रिय भूमिका नही निभा सके।

किसी रोगी को क्या रोग होता है ? जीते जी इसका पता चलना मुश्किल है लेकिन मरने के बाद डाक्टरो से कुछ भी छुपा नही रह सकता। तब वे इस बात का प्रामाणिक ब्योरा प्रस्तुत करते हैं कि रोगी किस रोग से मृत्यु को प्राप्त हुआ और यह रोग उसे किस बरस, किस महीने की

कौन सी तारीख को कितने बजे हुआ, दूसरे शब्दो मे यदि कोई रोगी अपने रोग के बारे मे सही-सही जानना चाहे तो उसे 'पोस्टमाटम' ही करवाना होगा। 'चैकअप' से तो यही पता नहीं चलता कि रोगी को मलेरिया है या साधारण जुकाम ?

अत मे एक घटना का उल्लेख करना अप्रासागिक नही होगा कि एक बार किसी बडे शहर के बडे अस्पताल के डाक्टरो न हडताल कर दी और लगभग एक महीने तक वे अस्पताल नही आए। बाद मे जब हडताल समाप्त हुई और वे अस्पताल आए तो उन्होने देखा कि सैंकडो रोगियो मे से केवल दो चार रह गए हैं अस्पताल मे। एक डाक्टर ने चपरासी से पूछा कि यह क्या माजरा है ? तब चपरासी ने कहा—"साहब, आप लोग तो यहाँ थे नही, इसलिए सब मरीज ठीक हो होकर अपने-अपने घर चले गए।"

आँखो देखा हाल एक सरकारी-दफ्तर का

नमस्कार। इस वक्त मैं एक सरकारी दफ्तर के प्रवेश द्वार से ठीक सामने बैंठा आपसे मुखातिब हूँ। मेरे ठीक सामने दफ्तर का प्रवेश द्वार है, जो खुला है। दफ्तर की बगल मे या यो कहिए कि छत्र छाया मे एक सुदर साईकिल स्टेण्ड है। जहाँ तक इसकी क्षमता का सवाल है, इसमे लगभग साठ से अस्सी तक साईकिलें एक साथ आराम से खडी की जा सकती हैं। आंकडे बताते हैं कि कई बार यह सख्या सौ को भी पार कर गई है। फिलहाल यहाँ आठ से बारह के बीच साइकिलें मौजूद हैं। मुझे उम्मीद है कि सख्या बढेगी और खाली स्टेण्ड खचाखच भरा हुआ नजर आएगा।

इस समय जबकि ठीक साढे-बारह बज रहे हैं, बाबुओं की पहली किश्त दफ्तर की ओर पहुँच रही है। जब तक यह फील्ड पर पहुँचे, आइए मैं आपको कुछ महत्वपूर्ण बातें अपनी तरफ से बताता चलूँ—

प्रत्येक बाबू जब दफ्तर में प्रविष्ठ होता है, उसकी जेब मे पडा पैंन कर झट हाथ में आ जाता है और आँखें उपस्थिति-पजिका की ।ज मे जुट जाती हैं। जो बाबू पेन लेकर नही आते (ऐसे बाबुओ की सख्या लगभग पैंसठ प्रतिशत होती है।) उनको उपस्थिति-पजिका के अतिरिक्त कोई पैंन वाला और तलाश करना पडता है। फिर हस्ताक्षर करने के साथ ही ये बाबू लोग फील्ड मे कूद पडते हैं।

बाबुओं के आते ही दफ्तर मे चहल पहल प्रारम्भ हो गई है। आकर कुछ चाय पीने चले गए हैं तो कुछ जाने की तैंयारी कर रहे हैं और कुछ (जिनको जेब खच अधिक मिलता है) वही चाय मगा रहे हैं।

आपकी घड़ियाँ इस समय दिन का साढे-एक मेरा मतलब डेढ बजा रही होगी। बॉस पधार रहे हैं। मैं देख रहा हूँ कि वे गाडी से उतर कर सामने चैम्बर की ओर बढ रहे हैं। अनुमान के विपरीत चैम्बर का दरवाजा बन्द है। बॉस से लगभग सोलह-सत्तरह मीटर के फासले पर एक बेंच पर दो-तीन चतुर्थ श्रेणी अधिकारी (कर्मचारी) स्थापित हैं। इससे पहले कि उनमें से कोई उठने का कष्ट करता, बॉस स्वय दरवाजा खोलकर भीतर तशरीफ ले गए।

बॉस के पदार्पण के साथ ही दफ्तर के हो हल्ले मे गिरावट आई है। जिसे आप भी महसूस कर रहे होगे। अब मैं भी स्थान-परिवर्तन कर दफ्तर के अन्दर चल रहा हूँ ताकि आपको आँखो देखा हाल सुविधानुसार सुना सकूँ।

दफ्तर मे प्रविष्ठ होते ही दीवार से लगी एक लम्बी बेंच है। इस पर तीन चार चतुर्थ-श्रेणी अधिकारी बैठे, गाली प्रतियोगिता एव छीना-झपटी मे लिप्त हैं। मेरे ठीक सामने से बडे बाबू चले आ रहे हैं। वे अधरो मे सिगरेट दबाए माचिस तलाश कर रहे हैं। माचिस की तलाश मे अब वे चपरासियो के पास पहुँच गए है। हाथ के इशारे से उन्होने माचिस माँगी। अब वे सिगरेट सुलगा रहे हैं। मगर यह क्या ? सिगरेट से धुआँ ही नही निकल रहा।

धुआँ क्यो नही निकल रहा। अभी मालूम करके बताता हूँ। मौसम का देखते हुए सर्वाधिक सम्भावना यही लगती है कि सिगरट शायद गीली है। और हाँ, मेरा अनुमान सही निकला। हमारे विशेषज्ञ ने मालूम कर बताया कि वास्तव मे सिगरेट गीली ही थी। इसको उन्होने बुरा-सा मुँह बनाते हुए फेंक दिया है और अब वे चपरासी के बण्डल से बीडी निकाल कर सुलगा रहे हैं। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि सभी बाबू लोग स्वाभिमानी होते हैं, इसलिए जो बाबू दूसरे बाबू से बीडी-सिगरेट माँगते हुए हिचकते हैं, वे चपरासियो से बीडी लेकर स्वाभिमान के साथ पीते हैं।

आइए, अब आगे चलें। दफ्तर के बडे हॉल मे पहुँचने के लिए स्टेनो के कमरे मे से होकर गुजरना पडता है। इसमे कुर्सी पर एक सुसज्जित

देवी विराजमान है। परिधान एव हाव भाव से तो "कुमारी" लग रही है, किन्तु गले म पड़े "उपकरण" व बालों मे उपस्थित "चमकीले लाल पदार्थ" से पता चलता है कि देवीजी "पति शुदा है," बहुत मुमकिन है "बच्चे शुदा" भी हो।

आप शायद जानना चाहेंग कि देवी जी क्या कर रही हैं। तो सुनिए। य बास के फर्जी बिल बना रही है। आमतौर पर बॉस अपने बिल स्वय ही बनाया करते हैं, किन्तु फर्जी काम उनसे नही होता और न ही उनकी आत्मा इसके लिए गवाही देती है। इसलिए वे यह पुण्य-कर्म इन्ही कोमलांगी क कर-कमलो द्वारा सम्पादित करवाते हैं।

स्टेनो के पास मैं देख रहा हूँ कुछेक बाबू बैठे गुटर-गूँ कर रहे हैं। किन्तु वह सुमुखी बगैर उनकी परवाह किए अपना कार्य किए जा रही हैं। बीच-बीच मे चेहरे पर आए कटे बालो का पीछे झटकना और मस्तक पर हाथ रखकर सोचने का सिलसिला भी जारी है।

भारत की घडिया म दोपहर के तीन बजे हैं। अब मैं बड़े हाल मे प्रवेश कर रहा हूँ। चारो ओर मेज-कुर्सियाँ लगी हुई हैं। कुछ मेजें खाली हैं तो कुछ मेजा पर दो से पाँच तक की तादाद में बाबू मौजूद हैं। इस प्रकार मेज और बाबुओ का अनुपात लगभग बराबर है। यह तो आप समझ ही गए होगे कि यही वह जगह है, जहाँ सभी छोटे-बड़े बाबू स्थापित हैं।

बाबू लोगो ने मिलकर बडे-बाबू यानी हैड-क्लर्क को घेर रखा है और उनको मुबारकबाद देकर उनसे चाय की माँग कर रहे हैं। वजह यह है कि हैड क्लर्क न दफ्तर की भौगोलिक स्थिति मे आमूल चूल परिवर्तन कर स्टेनो का मेज अपनी मेज के पास लगाने का मसौदा पास करा लिया है।

यहा बाबुओ का एक और जत्था भी मैं देख रहा हूँ। आइए, जरा पास चलें और पता लगाएँ कि लोगा की बहस का विषय क्या है। एक लम्बे बालो वाला बाबू कह रहा है कि उसके पास बैठने वाले बाबू ने उसके नाम से चाय मगा कर पी ली। वह उसके पैसे किसी भी हालत मे नही देगा, चाहे कोर्ट-केस ही क्यो न हो जाए।

कांव-कांव बहुत तेज हो गई है, जिसकी आवाज में कुछ स्पष्ट सुनाई नही दे रहा। समय भी अब अधिक नही है, चार बज चुके हैं। आध घण्टे बाद सब फील्ड छोड देंगे। समय से पहले अगर आ नही सकते तो क्या हुआ, समय से पहले जा तो सकते हैं। बाबू लोग बुद्धिजीवी-वग मे आते हैं, इसलिए ये दोहरी गलती नही करते। दफ्तर आने मे अगर कभी लेट हो जाएँ तो दफ्तर से जाने मे कभी लेट नही होते। दूसरे शब्दो मे—"आधा घण्टे बाद आओ और आधा घण्टे पहले जाओ" वाली बात है।

एक बात मैं आपको अपनी तरफ से बता दू। बाबू लोग जब घर से दफ्तर के लिए रवाना हो जाते हैं, तो घर के भीतर प्रविष्ट होने तक का समय दफ्तर के समय मे ही शामिल माना जाता है और घर के बाहर कदम रखते ही "ऑफिस-ऑवस" शुरू हो जाते हैं। कुछ लाग इस प्रवृत्ति की आलोचना करते हैं जो कि बाबुओ के प्रति घोर अन्याय है। क्योंकि वे घर से चलते हैं तो दफ्तर के लिए और दफ्तर से चलते हैं तो घर के लिए।

इसी बीच मुझे मौका मिला है, साहब के चैम्बर पर एक नजर डालने का। आइए भीतर चलते हैं।

चैम्बर मे प्रवेश करते ही दो जूतो की एडियाँ मुझे दूर से दिखाई दे रही हैं। मेरे ठीक सामने अब बॉस हैं। इन्होंने टाई को जरूरत से ढीला कर अगोछे का रूप दे रखा है। घूमने वाली यानि रिवाल्विग चेयर से आराम कुर्सी का काम लेते हुए, मेज पर पाँव पसारे, वे कोई पुस्तक पढ रहे हैं। पुस्तक का नाम पढ़कर मैं अभी आपको बताता हूँ, जरा झुकना पडेगा मुझे लीजिए, नाम पढ लिया मैंने। पुस्तक का नाम है—"गुमनाम अपराधी" जिस पर अस्त-व्यस्त वस्त्रो मे एक नवयोवना, हाथ मे खजर लिए न जाने क्या तलाश रही है।

दूरभाष की घण्टी बजने लगी है। बॉस ने मेज से खुर समेट लिए हैं। अब वे फोन उठा रहे हैं। मैं अपने माइक्रोफोन का सम्बन्ध फोन से जोड रहा हूँ ताकि मेरे साथ आप भी वार्तालाप का सुन सकें—

बॉस कौन ?

दूसरी ओर से मैं बोल रही हूँ।

बॉस तुम ?

दूसरी ओर से क्यो किसी और का इतजार था क्या ?

बॉस मेरा भेजा मत खाओ, जो कहना है बक दो।

दूसरी ओर से आप शायद भूल रहे हैं कि मैं शाकाहारी हूँ।

बॉस भगवान के लिए मुझे परेशान मत करो, ऑफिस मे काफी काम है, जो कहना है, जल्दी से कहो।

दूसरी ओर से मुझे जरा बाजार जाना है। रीजनल स्टोर पर मेकअप का कुछ नया सामान आया है। जल्दी जाना है जरा गाडी भिजवा दो।

बॉस मुझे एक अरजेन्ट मीटिंग मे जाना है।

दूसरी ओर से मीटिंग तो फिर हो जाएगी फिर मीटिंग मे आपके जाने से कुछ नही होता तो न जाने से क्या हो जाएगा ?

बॉस भेजता हूँ।

उम्मीद है, आपने सुन लिया होगा। अब आज का समय समाप्त होता है। कल फिर आपसे मुलाकत माफ कीजिए, मुलाकात होगी।

धन्यवाद।

दास्ताने सर्टिफिकेट

आज मैं सगर्व घोषणा करता हूँ कि मैंने एक सर्टिफिकेट बनवाया, आप कहेंगे, "तो इसमें कौन सा तीर मार लिया? एक दिन मे लाखो सर्टिफिकेट बनते हैं, तुमने भी बनवा लिया होगा एक।"

बनते हैं, साहब, हम कब कहते हैं कि नही बनते? लेकिन मेरी दास्तान सुनकर आप दाँतों तले उगली तो क्या पूरा हाथ दबाने को मजबूर हो जायेंगे और कह उठेंगे कि इस बहादुरी के लिए तो मुझे कोई पुरस्कार दिया जाना चाहिए।

हाँ, तो साहब, बात उन दिनो की है, जब हम कॉलिज मे अध्ययन के नाम पर मटरगश्ती कर इस देश का भला कर रहे थे। हमे विश्वसनीय सूत्रो से ज्ञात हुआ था कि हमारी दयालु सरकार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियो को आर्थिक सहायता देती है। बहती गगा मे हाथ धोना भला किसे नही सुहाता? लिहाजा हमने भी सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त करने का निश्चय किया।

उस वर्ष तो खैर प्रार्थना पत्र देने की अतिम तिथि निकल गई और हम टापते रह गए। क्रोध तो हम को इतना आया था कि जितना धनुष के टूट जाने के बाद परशुरामजी को भी नही आया होगा। लेकिन करते क्या? अगले साल का इतजार करने के अलावा और कोई चारा भी तो हमारे पास नही था!

हर साल की तरह अगला साल भी आया। समय से पहले ही हमने कॉलिज से फार्म लिया और उसे पूरा भर कर दे दिया। लेकिन उस निर्मम बाबू ने हमारी आशाओ पर कुठाराघात करते हुए वह फार्म हमे वापस थमा दिया और कहा

"इसमे जाति का प्रमाण-पत्र तो है ही नही।"

"यह कहाँ से बनवाना पड़ेगा ?" हमने साहस करके पूछ लिया।

"पता नही, फाम पर पीछे दिए गए निर्देश पढ़ो," उन्होंने कहा था।

दूसरे दिन अपनी प्राणप्यारी साईकिल मे हवा भरवा कचहरी के लिए रवाना हो गए। निर्देश पढने पर हमे पता चला था कि जाति का प्रमाण पत्र प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा दिया जाता है।

वहा पहुँचने पर हमने देखा कि प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट के दरवाजे के बाहर एक चतुथ श्रेणी कमचारी स्टूल के ऊपर बैठा बीडी फूक रहा है। हमे आगे बढता देख कर वह जल्दी से उठा, बाकी बची बीडी का एक लम्बा कश लिया और फिर उसे पाँव से मसलता हुआ हमारी ओर तेजी से बढा। वह हमे रुकने का इशारा कर रहा था मानो उसे डर हो कि हम मजिस्ट्रेट साहब से दो दो हाथ करने जा रहे हैं।

"क्या बात है ?" वह बोला।

हमने कहा, "भाई भाई साहब, हमे इस प्रमाण पत्र पर दस्तखत करवाने हैं।"

"साहब से तुम्हारी जान पहचान है क्या ?" उसने जैसे तुरप का पत्ता जडते हुए कहा।

"न नही तो, मगर क्यो ?" हमन भी कह दिया।

"फिर, साहब दस्तखत नही करते," वह एकदम निणय देते हुए बोल उठा।

"फिर ?" हमने मरी-सी आवाज मे उससे कोइ तरीका जानना चाहा।

'नीचे बाबू के पास जाओ," उसने कहा।

उसका आदेश सुनकर थोडी देर बाद हम वहाँ से चुपचाप चले आए। अब हमे उस बाबू की तलाश थी।

सौभाग्य से हम उस कमरे की खिडकी के बाहर पहुँचन मे सफल हो गए जिसके अन्दर एक चश्मे वाला बाबू अपने पास बैठी कटे बालो वाली एक टाइपिस्ट से बात करने में तल्लीन था। पहले तो हमारी व्यवधान पैदा करने की हिम्मत नही हुई। हमारी हालात उस कामदेव की सी

होने लगी, जिसे नारद का मोह भग करने के लिए भेजा गया हो आखिर हमने अपना सारा साहस एकत्र किया और डरते डरते कहा, "जनाब "

उन्होंने घूम कर हमारी तरफ देखा। उनका अन्दाज कुछ इस तरह का था, जैसे कोई पुराना दर्शक चिडियाघर म नए जानवर को देखता है।

"क्या है ?" वह बोले।

जवाब मे हमने वह कागज उनकी ओर बढा दिया, जिस पर हम प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट के दस्तखत और मुहर चाहते थे।

"जरा देखना, यह प्रमाण पत्र चाहते हैं," उन्होंने हमारा एक प्रकार से उपहास उडाते हुए पास बैठी टाइपिस्ट को वह कागज दिखाया। उस बालिका ने सुपारी चबाते हुए अधरों ही अधरो मे मुस्कराते हुए एक नजर हमारी ओर डाली और फिर दूसरी नजर लापरवाही से हमारे कागज पर डाली, बोली कुछ नही। उन साहब ने पहले तो अपना चश्मा ठीक किया, फिर बोले—

"प्रमाण पत्र ऐसे नही बनता है, पहले एक अदालती कागज लाओ, उस पर दो रुपए की अदालती स्टैंप लगाओ, फिर अर्जी लिखो और उसके साथ जाति के प्रमाणपत्र की नकलें लगाओ और "

"और, और क्या ?" घबरा कर बीच मे ही हमने पूछ लिया।

"और मेरा भेजा मत खाओ," उन्होंने जोर से कहा।

उनकी बात सुन हम उछल कर वहाँ से अलग हो गए। जाते जाते हमे उसी लडकी की खिलखिलाहट सुनाई दी थी, जो आज तक हूबहू याद है।

हमारी बुरी हालत थी। लेकिन हम भी हिम्मत हारने वालो म नही थे। हमने वे सारे काम कर लिए जो उस चश्मे वाले बाबू ने बताए थे और फिर डरते डरते हमने वे सारे कागज उसके सामने पेश कर दिए। वह लडकी अब की बार वहाँ नही थी, इसलिए वह कुछ काम कर रहे थे। उन्होंने एक नजर हमारे कागज पर डाली और फिर बोले, "ठीक है, मगर "

बस, साहब, उनका यह 'मगर' सुनकर हमारी जान उछल कर गले में आ गई। हमने साहस के साथ कहा, "और क्या बात है, श्रीमानजी ?'

'किसी विधान सभा के सदस्य से यह लिखवा कर लाओ कि तुम वास्तव में अनुसूचित जनजाति के ही हो" उन्होंने हमारे सामने एक नया रहस्योदघाटन किया।

हमम अब इतना साहस नहीं रहा था कि कलयुगी से कुछ बहस करते। हम क्या करते, बस जहर का सा घूट पीकर रह गए। बाहर आकर हमने अपनी साईकिल उठाई तब तक उसकी हवा फिर निकल गई थी। एक घड़ी वाले से पम्प माँग कर हवा भरी और अपने घर आ गए।

रात को हम सोच रहे थे, "जाति प्रमाणपत्र नहीं हुआ स्वर्ग का पासपोर्ट हो गया, जिसे इतनी जगहों से प्रमाणित करवाया जाए।"

सुबह हमने वही अपनी पुरानी साईकिल फिर से उठाई और हवा भर कर सात बजे ही अपने क्षेत्र के विधान सभा सदस्य के घर की ओर चल दिए। जल्दी इसलिए जा रहे थे कि हमारे एक मित्र ने हमको इस तथ्य से अवगत करवा दिया था कि वह हजरत सुबह दस बजे से शाम के पाँच बजे तक सोते है, खैर साहब, हम सही सलामत वहाँ पहुँच गए। वहाँ जाकर देखा तो उनकी मेज पर कागजों का ढेर द्रौपदी के चीर की तरह लग रहा था। जैसे-तैसे हम अपने कागज को सबसे नीचे रखने मे सफल हो गए।

उस दिन तो खैर हमारा नम्बर नहीं आया। आता भी कैसे ? दस बजते ही वह उठ कर सोने के लिए तैयार हो गए थे। दूसरे दिन हमारा नम्बर आ ही गया। उन्होंने हमारे दिल में आशा की एक लहर सी उत्पन्न करते हुए दस्तखत करने का उपक्रम किया, फिर वह बोले, "पहले तो तुम कभी नहीं आए।"

हम मन ही मन उनकी स्मरण शक्ति से प्रभावित हुए, फिर गला साफ करते हुए हमने कहा—

"जी पहले कोई काम होता था तो मैं आनन्द साहब के पास चला

जाता था, आजकल आपात स्थिति की वजह से वह "

हमारे इन शब्दो ने आग मे घी का सा काम किया। आनन्द साहब का नाम सुनते ही पहले तो उन्होने मुँह बिगाड लिया। उनकी भृकुटी तन गई, आवेश मे आ कर कागज हमारी तरफ फेंकते हुए बोले, "यह भी जाकर उन्ही से करवा लो, केन्द्रीय जेल मे हैं जब हम तुम लोगो के लिए इतना करते हैं तो तुम इन मरदूदा के पास क्या झख मारने जाते हो ?"

हमारी हालत अजीब सी हो रही थी। सब लोग हमारी तरफ उपेक्षा की दृष्टि से देख रहे थे, जैसे हमने कोई बहुत बडा अपराध कर दिया हो हम सोच रहे थे, अगर हम मुख्य मन्त्री होते तो इस सदस्य के बच्चे को विधान सभा के बजाए किसी तीसरी श्रेणी के दफ्तर मे चौथी श्रेणी का कर्मचारी बना देते। लेकिन कही गजे को भी नाखून मिले हैं ?

बुजुर्गों ने कहा है कि गरज के वक्त गधे को भी बाप बना लेना चाहिए। हमने भी उनकी नसीहत का पालन करते हुए इस विधायक को अपना बाप बना लिया। कहने का मतलब यह कि अत्यन्त अनुनय विनय कर हमने उनके अमूल्य हस्ताक्षर उस कागज पर समेट ही लिए। हम उस कागज को लेकर उसी शान के साथ आ रहे थे, जिस तरह कभी अंग्रेज व्यापारी मुगल सम्राट शाहजहाँ से व्यापार करने की अनुमति का फरमान लेकर गए होंगे।

उसी दिन हम उस चश्मे वाले बाबू के पास जा पहुँचे और वे कागजात उनके सामने पेश कर दिए, उन्होने उडती-सी एक नजर से उनको देखा और हमारे प्रार्थना पत्र पर एक मुहर लगा कर हमे थमा दिया। हमारी आखें उस पर प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर देखने के लिए बेचैन थी। उसने सारे कागजात का अवलोकन किया। इससे पहले कि हम कुछ कह पाते उनके श्रीमुख से यह शब्द निकल पडे, "तहसील से 'फारवर्ड' करवा कर लाओ।"

'भाड मे जाए यह प्रमाणपत्र और तुम्हारी तहसील,' हम कहना तो चाहते थे लेकिन कह नहीं सके। हमने आश्चर्य के साथ उनकी मुखाकृति

की तरफ देखा जो फिर बडी शान के साथ उस टाइपिस्ट की ओर मुखातिब हो गई थी।

हमे चक्कर-सा आ रहा था। भला यह भी कोई तरीका है। हमे थोडा-सा गुस्सा उन पर भी आया, जिन्होने इस प्रकार के ऊटपटाँग कानून बना रहे थे। अगर हमारा बस चलता तो ऐसे सब कानूनो को फाड कर नगर निगम वाले कचरे के ट्रक मे फिकवा देते। भला यह भी कोई बात हुई, हम जो हैं उसके लिए भी प्रमाणपत्र की आवश्यकता है और वह प्रमाणपत्र भी ऐसा जो दुनिया भर के लोगो द्वारा प्रमाणित हो ? हद हो गई। हम मन ही मन बडबडा रहे थे, लेकिन नक्कारखाने मे तूती की आवाज कौन सुनता है ?

हम कुछ भूख लग आई थी। एक थडी पर आकर हमने पचास पैसे की बासी नमकीन खाई ऊपर से एक कप चाय पी और फिर तहसील की ओर चल दिए। हम उस मेहमान की तरह डर रहे थे, जो बिना निमत्रण ही बीबी, बच्चो को लेकर जीमने चल दिया हो। खैर, साहब, हम किसी तरह तहसीलदार के पास जा पहुँचे, हमने डरते डरते कागज उनकी मेज पर रख दिए। उन पर बिना कोई दृष्टि डाले, उन्होने तपाक से कहा "पटवारी के पास जाओ।"

मरता क्या न करता, अब हम उस महामानव के सामने थे, जिसे तहसील की पारिभाषिक शब्दावली मे पटवारी कहा जाता है। उन्होने एक ढीला सा कुरता पहन रखा था उसके नीचे एक धोती और सबसे नीचे सूती मोजो के साथ सुशोभित प्लास्टिक के जूते। उन्होने तीन पैन जेब मे लगा रखे थे, चौथा उनके हाथ मे था, जिससे वह कुछ लिख रहे थे। उनके सामने भी हमने वही कागज रख दिए जो कई मजो की धूल चाटते चाटते अब काले से हो चुके थे।

पहले तो उन्होने चश्मा ठीक किया, फिर मन्त्रोचारण की तरह कुछ पढा, फिर उन्होने हमारी तरफ गरदन उठा कर जो रहस्योदघाटन किया, उसको सुन कर तो हमारे हाथो से तोते उड गए। वह कह रहे थे, "ठीक है, दो गवाह लेकर आओ। दोनो गवाह सरकारी कर्मचारी होने चाहिए, पर वे तुम्हारे सम्बन्धी न हो।"

इतना कह वह अपना काम करने लगे।

पटवारी की बात सुन कर हमे पुराणो मे वर्णित राजा त्रिशकु की कथा याद हो आई, जो किसी तरह स्वर्ग के दरवाजे तक पहुँच गया था, लेकिन इन्द्र ने वहाँ से वापस पृथ्वी की ओर फेंक दिया था और इन्द्र तथा विश्वामित्र के बीच सघर्ष के कारण आसमान मे ही लटकता रह गया था। हम वहाँ से बाहर निकले तो बेंच पर बैठे दो चपरासी एक दूसरे का बहनोई होने पर मजेदार बहस कर रहे थे, हम देख कर वे दोनो वहाँ से उठे और राहु-केतु की तरह हमारे दोनो ओर आ खडे हुए। उनमे से एक बोला, "भाई साहब, लगते तो आप पढे लिखे हैं ?"

हम चुपचाप उसका मुह देख कर यह अनुमान लगाने का प्रयत्न कर रहे थे कि यह कहना क्या चाहता है। अबकी बार दूसरा बोला—

"आप दिमाग से काम नही लेते, नही तो एक मिनट मे काम हो जाता।"

हम आश्चर्य सागर मे गोते लगाते हुए उस चाणक्य की सतान को देख रहे थे जो हमे दिमाग से काम लेने का उपदेश देते हुए आगे कह रहा था, "यहा दो पाँच के नोट दो गवाहो का काम करते हैं, भाई साहब," उसने हमारे कान के पास मुह लाते हुए इस तरह कहा, जैसे कोई सुरक्षा परिषद् का गुप्त प्रतिवेदन हमे सुना रहा हो।

लेकिन हम तो प्रमाणपत्र बनवा पाने की आशा ही त्याग चुके थे। सो सिर को एक झटका दिया और बाहर चल दिए।

घर लौट कर हमारे दिमाग मे खयाल आया कि प्रमाणपत्र तो अवश्य बनना चाहिए। इसलिए सुबह उठकर हम ऐसे दो आदमियो की तलाश करने लगे जो सरकारी कर्मचारी हो, चाहे जो भी हो, चलेगा। उनको क्या पता ये मेरे कौन हैं। आदमी तो दो से भी अधिक मिल गए, लेकिन उनमे से कोई भी अपनी एक छुट्टी खराब करने को तैयार नही था। हमारी हालत अब आत्मसमर्पण करने के दौर मे आ चुकी थी।

दूसरे दिन जब हम तहसील मे पहुँचे तो हमे यह देखकर खुशी हुई कि हमारे गाँव के कुछ आदमी वहाँ किसी काम से आए हुए थे, उनमे से

दो सरकारी कर्मचारी थे। कुल मिला कर बात यह हुई कि उन्होंने हमारी जमानत दी और बहुत लम्बी भूमिका के बाद उन पटवारी साहब ने उस कागज पर कुछ लिख दिया।

पटवारी के बाद तहसीलदार की स्वीकृति लेने में देर नहीं लगी। फिर हम उसी चश्मे वाले बाबू के पास जा पहुँचे और बड़ी शान के साथ हमने वह कागज उनको देते हुए कहा, "यह लीजिए, हो गया फारवर्ड," हमारे मुखश्री से यह सुन कर टाइपिस्ट हमारी ओर इस तरह देखने लगी, जैसे रामलीला में शिव के धनुष को उठाने का प्रयास करते मसखरे को दर्शक विशेषत महिलाएँ व बच्चे देखते हैं।

अब अधिक क्या बताएँ। तीन दिन बाद जब हम प्रमाणपत्र लेकर निकले तो बड़ी शान के साथ चल रहे थे। बाहर निकले तो हमारा एक दोस्त मिल गया। वह जरूरत से ज्यादा जल्दी में था। हमने उसके वहाँ आने का कारण पूछा तो वह लापरवाही से बोला, "अरे यार, एक जाति सम्बन्धी प्रमाणपत्र बनवाना है।"

हमने उसे अपने बारे में बताया तो उसने हमारा ही सर्टिफिकेट लेकर जल्दी में भाषा का जनाजा निकालते हुए उसकी नकल की। वह बहुत जल्दी में था, सो बोला, "तू दो पान लगवा मैं अभी पाँच मिनट में आता हूँ।' हम अपने साथ पेश आई मुसीबतों के बारे में उसे बताना चाहते थे पर वह तो कार्यालय में प्रविष्ट हो चुका था। हम सोच रहे थे अभी निराश होकर वापस आ जाएगा। पर ठीक पाँच मिनट बाद ही वह मेरे पास आ गया। उसका वह कागज देखा तो हम आश्चर्य से उछल पड़े। उसमें वही दस्तखत और वही मुहर लगी थी। इससे पहले कि हम इस बारे में उससे पूछते, वह पान खा कर चलते हुए बोला, "अरे यार, अपनी जान पहचान है।"

हम घर चले जा रहे थे, पर हमारे दिमाग में बराबर एक ही शब्द गूंज रहा था—'जान पहचान जान पहचान, जान पहचान।'

[मुक्ता (प्रथम) नवम्बर, 1979]

नेताजी डबल रोल मे

नाम तो वैसे उनका च दूलाल है पर कहते सब उनको नेताजी हैं। उनके व्यक्तित्व को देखते हुए उनके लिए यह विशेषण कुछ जँचता भी है। उस दिन नेताजी कुछ आवश्यकता से अधिक ही जोश मे थे। दफ्तर पहुँचकर समाचार पत्र मे हडताल की खबर पढकर उनके चेहरे पर इस तरह के भाव आ चुके थे, जैसे किसी भूखे ब्राह्मण को यजमान के यहा का न्योता मिल गया हो। वह महसूस करने लगे कि इस समय हडतालिया को उनकी सख्त जरूरत है। उनको लगने लगा कि जैसे उनके सिर एक ऐसा काम आ पडा है, जिसकी सारी सफलता केवल उन पर ही निभर है।

सो, नेताजी तुर त हरकत मे आ गए। इस क्रम मे उ होने सबसे पहला काय तो यह किया कि वह अपने कमरे से फौरन बाहर आए, अपनी साइकिल उठाई और हवा की गति से घर के लिए रवाना हो गए। हुआ यह था कि वह रोज की तरह कमीज-पेंट पहन कर कार्यालय आ गए थे। अवसर को देखते हुए यह पोशाक उ हे उपयुक्त नही लगी। इसलिए घर आकर उ होंने इधर उधर से ढूढकर अपना कुरता-पाजामा निकाला। मारे मैल के वे सफेद से मटमैले हो रहे थे, पर इसकी परवा किए बगैर उ होने वही पहन लिए। अच्छे खासे जूते थे। पर उ ह निकाल कर उ होने हवाई चप्पलो का वरण किया। फिर किताबो व कागजो के सम्मिलित ढेर मे से उ होने अपनी फटी-पुरानी डायरी खोज निकाली। कुरते से उसकी धूल साफ करते हुए उ होंने एक-दो कागज तह कर उसमे रख लिए।

किन्तु पूरे कमरे में इधर उधर घूम रही उनकी खोजी निगाहों से लगता था कि वह अभी तक अपनी तैयारी से सतुष्ट नही हुए थे। कुछ ढूँढते-ढूँढते वह रसोई मे जा पहुँचे। वहाँ खूँटी पर एक लम्बा-सा झोला टगा था। एक झटके म उन्होंने उसे उतारा और उसे उलटा कर दिया। उलटा करते ही उसमे से कुछ आलू व प्याज धड़ाधड़ फर्श पर आ गिरे। गिरते ही पहले तो वे उन्मुक्त नृत्य करने लगे, फिर इधर उधर आराम फरमाने लगे। नेताजी उधर ध्यान न दे झोले को जोर-जोर से झाड़ने लगे। उसमे से कुछ प्याज के छिलके व सूखकर सिमटी हुई हरी मिर्च निकल रही थी। झाड़न के बाद उन्होंने उसमे डायरी रखी और उस कधे पर लटका लिया। दरवाजे से निकलते निकलते उन्होंने एक नजर दपण मे डाली। अपने चेहरे की भौगोलिक स्थिति का सर्वेक्षण किया और बाहर आ गए। फिर वह साईकिल पर बैठ कर दफ्तर के लिए रवाना हो गए। रास्ते मे एक स्थान से समाचार पत्र लिया और उसे भी झोले म रख लिया। इस प्रकार सजसवर कर वह फिर दफ्तर पहुँच गए।

दफ्तर के सभी कमचारियों के बीच चर्चा का एक ही विषय था—'हड़ताल' अपनी अपनी समझ के अनुसार उस पर सब टीका टिप्पणी कर रहे थे। कुछ लोग हड़ताल का समथन कर रहे थे। एक सज्जन कह रहे थे, "हमारे हड़ताल मे भाग लेने या न लेने से क्या फक पड़ेगा?"

"सभी लोग तुम्हारी तरह सोचने लगे तो हो चुका कमचारियों का भला।"

यह बात नेताजी ने कमरे मे प्रविष्ट होते हुए सामने बैठे उस कमचारी की बात सुनकर कही थी। उनकी बात सुनकर वह सज्जन कुछ झेंप से गए। अब सभी की दृष्टि नेताजी पर केंद्रित हो गई। मुस्कराते हुए नेताजी अन्दर जाकर खाली पड़ी एक कुर्सी पर बैठ गए। झोले को उतार कर उन्होंने सामने मेज पर रखा। फिर उपस्थित लोगों पर नजर डाली। एक चपरासी से कहकर उन्होंने बाकी कमचारियों को भी वहाँ बुलवा लिया। सबके एकत्र हो जाने पर नेताजी ने कहना प्रारम्भ किया—

"साथियो, जैसा आप लोगों ने अखबार मे पढ़ा है, हमारी यूनियन ने आज से हडताल करने का निश्चय किया है। यह फैसला हमने अचानक नही लिया है, एक महीने पहले ही इसके बारे मे हमने सरकार को नोटिस दे दिया था। पर भाइयो, कहते हैं न कि बगैर रोए तो मा भी अपने बच्चे को दूध नही पिलाती। यही वजह है कि अभी तक सरकार के कानो पर जू तक नही रेंगी है। हार कर हमने आदोलन का सहारा लिया है, क्योकि लातो के भूत बातों से नही मानते।

"यह आदोलन एक बार प्रारम्भ होने के बाद तभी समाप्त होगा, जब हमारी माँगें मान ली जायेंगी। उससे पहले किसी भी सूरत मे नही। ये माँगें किसी एक व्यक्ति की नही हैं, किसी एक वग की नही हैं, बल्कि हम सब की है। प्रत्येक कमचारी का लाभ होगा। इसलिए आज से हम सब हडताल पर रहेंगे। न हम काम करेंगे और न ही होने देंगे। सगठन मे बहुत शक्ति होती है। मजदूरो की इस सगठित शक्ति ने कई देशो मे सरकारें बदल डाली हैं। फिर हमारी तो साधारण सी माँगें हैं। हम अपना हक माँग रहे हैं। कोई खैरात या भीख नही।

"हमारे कुछ नए साथी डर रहे हैं। यह सोचकर कि हडताल मे भाग लेने से न जाने उनके विरुद्ध क्या कारवाही की जायगी। मैं उन साथियो से यह कहना चाहता हूँ कि डरने की कोई बात नही है। मुझे इस विभाग मे पापड बेलते 15 वष हो गए हैं। मैं यहा की रगरग से परिचित हूँ। लेकिन फिर भी अगर कोई तरह की समस्या आई तो पहले उसका समाधान किया जाएगा, उसके बाद ही हम काम पर जायेंगे। इसकी मैं आपको गारटी देता हूँ। अब आप सब लोग मेरे साथ आइए।"

इस लम्बे भाषण के बाद नेताजी कुर्सी स उठ खडे हुए। कार्यालय के बाकी कमचारी भी उनके पीछे पीछे कार्यालय से बाहर आ गए। नारेबाजी होन लगी। थोडी देर तक नारे लगवाने के बाद चदूलाल जी बोले, "आप लोग यही ठहरिए। मैं जरा अधिकारी महादय से बात करके आता हूँ। उनको बताता हूँ कि आज से इस कार्यालय मे काम 'नही होगा।" कहते हुए चदूलाल ने झोले से डायरी निकाल कर हाथ मे ले ली और साहब के कमरे की ओर चल दिए।

"आइए, चन्दूलाल जी," साहब ने कहा।

"नमस्ते श्रीमान," हाथ जोड़कर मुस्कराते हुए चन्दूलाल ने कहा।

"तो आप हड़ताल पर हैं ?"

"आप तो जानते हैं, श्रीमान, मैंने हमेशा प्रबंधकों का ही साथ दिया है, हड़ताल करने वालों का नहीं।" एक कुर्सी खींचकर चन्दूलाल बैठ गए।

"अभी तो आप नारे लगवा रहे थे," साहब बोले।

"नारों का हड़ताल से क्या सम्बन्ध है श्रीमान ?"

"मैं समझा नहीं।"

"बात यह है, श्रीमान, कि लोगों को मूर्ख बनाने के लिए यह जरूरी है।"

"मतलब आप हड़ताल के पक्ष में नहीं हैं ?" साहब ने पूछा।

"बिलकुल नहीं।"

"क्यों ?" साहब भी जिज्ञासु हो उठे थे।

"इसलिए कि उनकी यूनियन अलग है, हमारी यूनियन अलग है। और फिर यह हड़ताल कर्मचारियों की माँगों के लिए नहीं, बल्कि ...े के व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए हो रही है। अपनी साख बनाने लिए की जा रही है।" चन्दूलाल अर्थभरी दृष्टि से साहब की ओर देखने लगे।

"आप तो काफी पुराने आदमी हैं, चन्दूलाल जी, यह बताइए कि इस मौके पर हम क्या कदम उठाने चाहिए ?" साहब ने पूछा।

चन्दूलाल इस समय अपने आपको विश्व का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति समझ रहे थे। उन्होंने पहले दरवाजे की ओर देखा, फिर किसी राज्यपाल के वरिष्ठ सलाहकार की भाँति धीमे स्वर में कहने लगे, "श्रीमान, मेरे विचार में तो हड़ताल में भाग लेने वाले कर्मचारियों की सूची बनाकर उच्चाधिकारियों के पास भेज देनी चाहिए। बाकी काम वहीं से अपने आप हो जायेगा। कुछ दिनों बाद कुछ को चार्जशीट, कुछ

का तबादले के आदेश तथा कुछ को मुअत्तल कर दिया जाए। सच कहता हूँ, श्रीमान, फिर इस कार्यालय म कभी हडताल नही होगी।"

"धन्यवाद, च दूलाल जी, आपन एक काम की बात बताई है।" साहब ने कृतज्ञता व्यक्त की तो चन्दूलाल फैलकर चौगुने हो गए। कूटनीतिक अन्दाज मे बोले, "मैं बाहर जा रहा हूँ। श्रीमान, आपसे यह कहने आया था कि मुझे अवकाश पर समझें, हडताल पर नही।" कहते हुए चन्दूलाल ने अपना झोला उठाया और कमरे से बाहर आ गए। बाहर खडा जन समुदाय उन्ही की प्रतीक्षा कर रहा था। चन्दूलाल ने सबको पास वाले मैदान म चलने का सकेत किया।

थोडी देर बाद चन्दूलाल मैदान मे कमचारियो को सम्बाधित करत हुए कह रह थे, "साथियो, मैंने स्थानीय अधिकारिया स बातचीत करने का प्रयास किया, किन्तु वे इसके लिए तैयार नही है। पर हमारा निश्चय अटल है। हमने फैसला किया है कि एक प्रतिनिधिमण्डल उच्चाधिकारियो से वार्ता करन के लिए भेजा जाए। प्रत्येक वग म से एक आदमी इस दल मे लेना पडेगा। फिर भी हम प्रयास करेंगे कि कम से कम आदमी हो। कुल मिलाकर 10 से 12 आदमिया का एक प्रतिनिधिमडल कल प्रात रवाना होगा।

"इस काय के लिए धन की नितात आवश्यकता है। इतने आदमिया का कम से कम आने जाने का किराया-भाडा तो देना ही होगा। हो सकता है। वहाँ एक दो दिन ठहरना भी पडे। ऐसी स्थिति मे उनके ठहरने व खाने पीने की व्यवस्था भी करनी होगी। लेकिन यह खर्चा उस लाभ के मुकाबले मे कुछ नही है, जो हडताल के बाद हम सबको होगा। इसलिए आप सब लोग अभी इसी वक्त अपनी क्षमता के अनुसार चन्दा दें। ताकि शीघ्रातिशीघ्र प्रतिनिधिमडल रवाना हो सके।"

इसके बाद वहा च दा एकत्र किया जाने लगा।

दूसरे दिन चन्दूलाल अकेले ही रवाना हो गए। अकेले इसलिए कि वह अपने आपको किसी प्रतिनिधिमण्डल स कम नही आँकते थे। राजधानी पहुँच कर उन्होन होशियारीलाल से भेंट की। होशियारीलाल उस यूनियन क नेता थे, जिसके कहने पर यह हडताल प्रारम्भ हुई थी।

पहले चन्दूलाल और होशियारीलाल दोनों एक ही यूनियन के पदाधिकारी थे। चन्दूलाल अध्यक्ष और होशियारीलाल महामंत्री थे। चन्दे के मामले को लेकर दोनों में झगड़ा हो गया और दोनों अपने-अपने समर्थकों को लेकर अलग हो गए थे। नेतागीरी उनके रक्त में घुल चुकी थी, इसलिए वे शांत नहीं रह सके और दोनों फिर अलग यूनियनों में आ गए थे।

आज दोनों महारथी आमने-सामने थे।

"कहिए आपके शहर में हड़ताल कैसी चल रही है?" होशियारीलाल ने पूछा।

"शतप्रतिशत ठीक, लेकिन..."

"लेकिन क्या?"

"लेकिन वह तब तक ही रहेगी, जब तक कि मैं चाहूँगा," चन्दूलाल ने कुटिलता के साथ कहा।

"मतलब?" होशियारीलालजी असमंजस में थे।

"मतलब यह कि राजपुर में हड़ताल हमारे कार्यालय पर निर्भर है और कार्यालय के सब कर्मचारी मेरी मुट्ठी में हैं। आज वे सब हड़ताल पर हैं, पर कल मैं कहूँ तो सब काम पर लौट आएँगे और अगर ऐसा हुआ तो आपकी इस हड़ताल की सफलता खटाई में पड़ जाएगी। तब शायद यह आपकी अंतिम हड़ताल होगी। अर्थात आपकी नेतागीरी का खात्मा।"

होशियारीलाल चन्दूलाल की बात को समझने का प्रयास कर रहे थे। बोले "आप साफ साफ कहिए न।"

"सीधी सी बात है कि इस हड़ताल की सफलता-असफलता में मेरी निर्णायक भूमिका है।"

"समझा", होशियारीलाल ने गरदन हिलाते हुए कहा, "लेकिन कर्मचारियों की मांगें?"

"अजी, कर्मचारी जाएँ भाड़ में, अपनी बला से। आप अपनी सोचिए, मेरी सोचिए। अगर यह हड़ताल सफल रही तो आपकी चाँदी ही चाँदी है," होशियारीलाल की बात बीच में काट कर चन्दूलालजी फूट पड़े। होशियारीलाल भी सोचते-सोचते शायद कुछ निश्चय की स्थिति

मे आ चुके थे। तभी तो उन्होंने एकदम सीधे पूछ लिया, "इसमे आपका मेहनताना ?"

"वही पुराना समझौता," चन्दूलाल ने इस तरह से कहा, जैसे यह वाक्य उन्होंने पहले सोच रखा हो।

चन्दूलाल की यह बात सुनकर होशियारीलाल मन ही मन तिलमिला उठे। पर कुछ सोच कर निर्णय लेते हुए बोले, मजूर है।

"यह हुई न कोई बात, "प्रसन्नता से उछलते हुए चन्दूलाल ने होशियारी लाल से बड़े जोश के साथ हाथ मिलाया। फिर चलने का उपक्रम करते हुए बोले "अब देखना आप, अधिकारियों को नाको चने नही चबवा दिए ता मेरा नाम चन्दूलाल नही।"

दूसरे दिन चन्दूलाल वापस आ गए। व बेहद खुश थे। होशियारी लाल से उनका समझौता हो गया था। अगले दिन वह जुलूस के साथ कार्यालय पहुँचे। एक चपरासी ने आकर बताया कि उनका साहब बुला रहे हैं। वह उसके साथ ही साहब के कमरे की ओर चले गए।

'एक सूची बनानी है," साहब ने कहा।

"क्षमा कीजिएगा, साहब, मैं हड़ताल पर हूँ" चन्दूलाल ने रहस्योद्‌घाटन किया।

"कल तक तो आप विरोध मे थे ?"

"वह इसलिए कि पहले हड़ताल व्यक्तिगत उद्देश्या के लिए थी।"

"तो अब क्या उद्देश्य बदल गए है ?" साहब ने आश्चय प्रकट करत हुए पूछा।

"जी हाँ, मैंने नोटिस मे कुछ सशोधन करने का सुझाव रखा था, जिसको उन्होने मान लिया। बस, हम भी आदोलन मे शामिल हा गए हैं।"

"आपने तो कहा था कि आप हमेशा प्रबन्धको के साथ रहे हैं ? साहब ने याद दिलाया।

प्रबन्धकों ने हमको क्या दिया है आज तक ?" चन्दूलाल के बदले हुए तेवर देख कर साहब भी कुछ सहम गए। बोले, "तो आप हड़ताल करेंगे ?"

"जी, हाँ, हम हड़ताल करेंगे और जरूर करेंगे। तब तक करेंगे, जब तक हमारी माँगें नहीं मान ली जाती," चन्दूलाल ने साहब की मेज पर जोर से मुक्का मारते हुए कहा और अपना झोला उठा कर कमरे से बाहर आ गए। बाहर आकर उन्होंने जनसमुदाय के सामने हाथ उठाकर जोर से कहा, "इन्कलाब "

"जिन्दाबाद " जनसमुदाय का गगनभेदी स्वर उभरा।

[मुक्ता (प्रथम) जनवरी, 1981]

जख्मी अँगुली और दुपट्टे का कोना

एक दिन सुबह-सुबह मैंने, पता नही आईना देख लिया था या कोई मनहूस चेहरा कि शाम ढले एक नन्ही-सी दुघटना घटित हो गई। शीशे का एक गिलास जिसको मैंने हजारो बार अपने अधरो से लगाया होगा, धोते समय मेरे हाथ मे वीरगति को प्राप्त हो गया और मेरे सीधे हाथ की एक अँगुली की हालत वह कर गया जो खनुआ की लडाई मे राणा साँगा की हुई थी—चुम्बन का बदला जख्म, यह क्या किया कमबख्त तूने।

अनामिका से लहू बहते देख, मैंने पहले तो होठ भीचे और फिर तुरन्त जख्मी हिस्से को भीच लिया, दूसरे हाथ से सम्पूण शक्ति लगा कर। प्राथमिक उपचार जैसी कोई सुविधा आसपास न होने के कारण जख्म को भीचे रहना ही एकमात्र चारा था उस वक्त मेरे पास। मेरा मस्तिष्क एक विषय पर स्थिर हो गया। यानी योग' मे जो सफलता 'प्रत्याहार' की अवस्था तक पहुँचने के बाद हासिल होती है, वह मुझे इस जख्म से मिल गई। लिहाजा मे चिन्तन करन लगा। मेरी मुद्रा दाशनिको-सी हो गई।

यह वही अँगुली थी, जिसमे सगाई के शुभ अवसर पर अँगूठी पहनाई जाती है और जिसके बारे मे एक नायिका ने कहा था—'रहूँगी तेरी अँगुली म डाल के अँगूठी, रखियो साँवरिया सभाल के अँगूठी।' इस चिन्तन के प्रारम्भिक चरण मे मुझे ज्ञान हुआ कि एक सौन्दय बोध रखन वाले नवयुवक की जेब मे रेजगारी भले न हो, पर एक अदद प्रेमिका जरूर होनी चाहिए।

फिल्मो मे अक्सर मैंने देखा था कि इधर नायक को जरा-सी खरोच आई नही कि उधर नायिका ने झट फाड़ा कोना अपने दुपट्टे अथवा साड़ी का और बाँध दिया नायक की खरोच पर। इस विषय की गहराई मे जाने पर मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि इस किस्म का प्राथमिक उपचार केवल साड़ी अथवा दुपट्टा धारण करने वाली नायिका ही कर सकती है, बिकनी धारिणी नही। बिकनी मे इतनी गुँजाइश नही होती कि उसमें से टुकड़ा फाड कर जख्म का प्राथमिक उपचार किया जा सके। बल्कि कुछ बिकनियाँ तो इतनी सक्षिप्त होती हैं कि दो-तीन को मिला कर भी एक अँगुली पर पट्टी नही बाँधी जा सकती। जीन्सधारिणी के लिए भी यह उपचार कर पाना सम्भव नही, क्योकि 'फाड सके जो जीन्स को, नाजुक अँगुलियो मे वो ताकत कहाँ।' मेरी आँख जरा मुदी तो क्या देखता हूँ कि श्रीदेवी अपनी साड़ी का किनारा फाड़ते हुए मेरी ओर तेजी से बढ़ रही है। आँख खुली तो श्रीदेवी गायब थी। दीवार पर छिपकली रेंग रही थी, जिसकी पूछ कटी हुई थी।

तो जनाब उस वक्त मुझे एकाध प्रेमिका की सख्त जरूरत थी, जो अपने दुपट्टे अथवा साड़ी के किनारे से मेरी अँगुली के जख्म का प्राथमिक उपचार कर सके। तभी अचानक मुझे अपनी नासमझी का ध्यान आया। मैंने अपने आप से कहा प्यारे भाई, अगर तुम यह समझते हो कि कोई प्रेमिका चल कर यहाँ तुम्हारे पास बाथरूम मे आ जाएगी, तो गलत समझते हो। उसे कम से कम यह तो मालूम होना ही चाहिए कि तुम्हारे साथ क्या हादसा दरपेश आया है।

सोच विचार करने के बाद मैं अपनी जख्मी अँगुली को पूर्ववत सम्भाले, बाथरूम से निकल कर बॉलकनी मे आ गया और उम्मीद भरी नजरो से इधर उधर निहारने लगा कि है कोई दुपट्टे वाली, साड़ी वाली जो इस स्वर्ण-अवसर का लाभ उठा कर प्रेम के प्रस्फुटन मे परिधान का प्रयोग कर अपने आपको कृतार्थ कर सके।

इस क्रम मे मेरी दृष्टि सर्वप्रथम दो लडकियो पर जमी जो थोड़ी दूर एक बड़े से घर के पिछवाड़े लॉन मे गट्टे खेल रही थी। मुझे कुछ अजीब-सा लगा। इतनी बड़ी होकर ये मूर्खाएँ गट्टे खेल रही हैं यहाँ,

फिर इक्कीसवी सदी मे कैसे पहुँच पाएँगी ? इन्हे तो अपने अपने दुपटटे सभाले जख्मियो की खोज मे निकल पडना चाहिए लेकिन हाय री किस्मत। वे दोनो ही दुकूलविहीन थी, जैसे औषधि के बगैर चिकित्सक। उनको इस स्थिति मे पाकर मैंने उधर से दृष्टि समेट ली।

इसके पश्चात मेरी दृष्टि एक घर की छत पर स्थिर हो गई। वहाँ एक नायिका झुकी हुई झाडू लगा रही थी। हवा मे उसकी साडी विजयवाहिनी के ध्वज-सी फहरा रही थी। देख कर आस बधी। मैं इतजार करने लगा कि कब वह अज्ञात यौवना मेरी जानिब मुखातिब हो। काफी देर वह झाडू लगाती रही और बीच-बीच मे हर तीस सैकिड बाद नियमित रूप से इधर उधर ताकती रही। जब उसने मेरी दिशा को छोड, शेष प्रत्येक दिशा मे लगभग पचहत्तर बार देख डाला, तो मैं कुछ मायूस हो चला। मुझे लगा, मेरा घर अशुभ दिशा मे है। दिशा का नहीं तो मकान को तो बदल ही देना चाहिए। मैं यह सोच ही रहा था कि

आखिरकार पहले सौ बार इधर और उधर देख लेने के पश्चात् उसने एक नजर मेरी ओर डाली। यह सक्षिप्त सा सक्रमण काल था। इसलिए मैंने व्यर्थ समय न गवाते हुए झट अपनी जख्मी अँगुली उसको दिखा कर सकेत मे समझाना चाहा। लेकिन वो जो थी हसीना, वा मेरी उम्मीद से बहुत अधिक समझदार निकली। उसने मेरे सकेत का जान क्या गर शास्त्रीय मतलब निकला कि अपना झाडू वाला हाथ मेरी ओर यों लहराया, मानो कह रही हो—'मार ही देती झाडू सर पे, पास अगर तुम होते।' हालांकि ऐसी नासमझ नायिकाओ को छत पर कभी आना नही चाहिए, फिर भी मैंने उस नादान को यह सोच कर माफ कर दिया कि शायद लिखी पढी कम है, सो मतलब नही समझती इशारो का।

एक और छत पर भी एक दुपटटे वाली नायिका थी, लेकिन उसको देखते ही मैं सहम-सा गया। वह एक बडे से छुरे से छोटा-सा तरबूज काट रही थी। मैंने सोचा, इसके लिए इस वक्त मेरा महत्व तरबूज से ज्यादा नही होगा।

मैंने निष्कर्ष निकाला कि सभावित घटना को कार्यरूप देने के लिए

बॉलकनी उपयुक्त स्थान नहीं है। क्योंकि वहाँ से किसी को अत्यधिक प्रयास के बावजूद भी जख्म को दिखा पाना सम्भव नहीं था। इसलिए मैं बॉलकनी से उतर कर प्रवेश-द्वार पर आ गया और फाटक से कुहनियाँ टिकाए इतजार करने लगा, जो भी उपर्युक्त पात्र पहले आ जाए, उसी का। अँगुली के जख्म को मैंने अब भी दूसरे हाथ से भींच रखा था, पूरा जोर लगा कर।

यों तो बहुत से लोग आ-जा रहे थे फाटक के सामने से, लेकिन मुझे जिसका इतजार हो सकता था वह काफी देर से आई दाहिनी तरफ से। पास से जाने लगी तो मैंने कहा—

'सुनिए'

'फरमाइए ?' उसने रुकते हुए कहा।

'मेरी एक अँगुली टूट गई है।' मैंने अगुली दिखाई।

उसने पूछा— तो क्या दिक्कत है ?'

मैंने कहना चाहा—'जी यो '

'जनाब।' उसने विज्ञापनी अन्दाज में कहा—'खुदा ने हर शख्स को बीस अँगुलियाँ फरहाम की हैं। इनमें से अगर एकाध खर्च हो गई तो क्या फर्क पड़ गया।'

'लेकिन '

खुदा हाफिज।' मेरी बात को अनसुनी करते हुए उसने कहा और चली गई।

क्या जमाना आ गया है। मैंने सोचा और उसे जाते हुए देखता रहा। उधर से एक दुपट्टे वाली आ रही थी। दुपट्टे के साथ उसके कटे बाल भी हवा में लहरा रहे थे। जब तक वह दूर थी, मेरी तरफ ही देख रही थी, लेकिन पास आने पर वह दूसरी ओर देखने लगी।

'सुनिए। पास से गुजरने लगी तो मैंने कहा।

यस।' उसने पलट कर थोड़ा मुह ऊपर उठाकर आँखों से धूप का चश्मा उतारा।

'मेरी एक अँगुली कट गई है देखिए।

'आई सी इट्स ए इट्रेस्टिंग केस।'

'जी।'

'क्या करते हो ?'

'कुछ नहीं।' मैंने कहा।

'यू मीन नथिंग एनी जॉब-वॉब ?'

'जाब मिलता ही कहाँ है आजकल ?'

'दैन इटस ए गोल्डन चांस जेंटलमैन।'

'वट हाउ।' मैंने भी अंग्रेजी बोली।

'बाई द वे आपका फिंगर कितना कटा है ?'

'लगभग आधा।'

'बाकी हाफ भी काट डालो मैन।'

'किसलिए ?' मैंने चौंक कर कहा।

'इसलिए कि फिर तुम्हें सर्टिफिकेट मिल जाएगा हैण्डिकैप्ड होने का। इसके बाद जॉब मिलने में नो प्राब्लम। ब्राइट फ्यूचर मैन' वह मुस्कराई।

'लेकिन मेरी अँगुली।'

'जॉब अँगुली से ज्यादा इम्पार्टेंट होता है यंग मैन टेक इट सीरियसली। कह कर वह खटखट करती हुई चली गई।

क्या सोचा था और क्या हो रहा था। देख कर बहुत अफसोस हुआ। इस नायिका से मिलने के बाद मुझे पूर्ण विश्वास हो चला कि मेरी जख्मी अँगुली और किसी दुपट्टे अथवा साड़ी के किनारे का संयोग है ही नहीं। जैसे जैसे अँगुली में तकलीफ बढ़ती जा रही थी, मेरे रूमानी ख्यालात हवा होते जा रहे थे। उसके बाद अनेक नायिकाएँ अपने दुपट्टे और साड़ियाँ फहराती हुई मेरे सामने से गुजर गईं, लेकिन मैंने किसी में रुचि नहीं ली। (वैसे भी कायदे से रुचि उनको ही लेनी चाहिए था)।

अंत में हुआ यह कि एक परिचित महिला उधर से गुजरी। पास आई तो मुझे देख कर बोली—

'क्या हो गया हाथ को ?'

'अँगुली कट गई।'

'तो ऐसे पकड़े क्यों खड़े हो, कुछ बाँधो इस पर।'

'क्या बाँधू मतलब कैसे बाँधू एक हाथ से ?'

'ओ हो ' उन्होंने मेरी तरफ ऐसे देखा जैसे एम०ए० पास मिडिल फेल को देखता है। फिर वह फाटक खोल कर अन्दर आई। इधर-उधर देख कर उन्होंने डोरी पर सूखता मेरा एक बनियान उतार लिया। उसमें से उन्होंने एक लीरा कुछ इस अन्दाज में फाड़ा कि मुझे हूण-आक्रमण की बात याद आ गई। उसको पानी में भिगोकर उन्होंने मेरी अँगुली पर लपेट दिया और यह हिदायत देते हुए चली गईं कि पट्टी करवा लेना। अब तो पट्टी ही करवानी होगी—मैंने अपने आपसे कहा और अन्दर आ गया।

कब्र हमारी मुर्दा आपका

प्रत्येक नवयुवक के जीवन में एक मोड़ आता है, जहाँ पहुँचकर उसका सम्पूर्ण ध्यान फालतू विषयों से सिमट कर रोजगार पर उसी प्रकार केन्द्रित हो जाता है, जिस प्रकार परीक्षा के समय अर्जुन का ध्यान सिर्फ पक्षी की आँख पर केन्द्रित हो गया था। मैं स्वयं जब इस मोड़ पर पहुँचा तो मैंने कई क्षेत्रों के सम्बन्ध में चिन्तन कर यह निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया कि मैं क्या करूँ और क्या न करूँ? कहाँ मैं अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल कर सकता हूँ और कहाँ नहीं? कौन-सा क्षेत्र मेरी प्रतिष्ठा के अनुकूल होगा और कौन सा नहीं?

इस क्रम में आम भारतीय नवयुवक की भाँति मेरा ध्यान भी सर्वप्रथम फिल्म-जगत की ओर ही गया। यहाँ योग्यता का जो पैमाना मेरी समझ में आया, उसके मुताबिक मैं कहानीकार, गीतकार, संवाद लेखक, संगीतकार, अभिनेता, निर्देशक कुछ भी बन सकता था और अनेक नवीन कीर्तिमान स्थापित कर सकता था।

तो जनाब पक्का इरादा लिए मैं फिल्मों की मायानगरी बम्बई पहुँच गया। इधर साहित्य में मैंने एम० ए० किया था और उधर एक फिल्म निर्माता ने अखबार में विज्ञापन दिया कि उसको अपनी आगामी फिल्मों के लिए कहानीकार, संवादलेखक वगैरह की जरूरत है। काफी प्रयास के पश्चात मैं उस फिल्म निर्माता से भेंट करने में सफल हुआ। उसके कार्यालय में प्रविष्ट होकर बैठते ही उन्होंने पूछा—

"फरमाइए, क्या खिदमत कर सकता हूँ मैं आपकी?"

"जी, खिदमत करने के लिए तो यह खाकसार हाजिर हुआ है।"

"सो कैसे ?"

"वो ऐसे कि मैंने अखबार म आपका विज्ञापन पढा था।"

"कौन सा विज्ञापन ?" उनको याद नही था शायद।

"वही जिसके तहत आपको अपनी आगामी फिल्मो के लिए कहानीकार, सवादलेखक वगैरह की जरूरत है।" मैंने याद दिलाया।

"तो ?" एकदम रूखा स्वर।

"मैं उसी सिलसिले म आया हूँ।"

"क्या कर सकेंगे आप ?"

"जिसका भी अवसर मिले।"

"वैसे क्या करते हैं आप ?"

"मैं साहित्यकार हूँ।"

'किस कम्पनी म ?"

"जी, मैं लेखक हूँ लेखक लिखता हूँ' अचकचाकर कह पाया मैं।

"अच्छा अच्छा, राईटर। यानि साहितकार "

"जी।"

"तब आप मेरे पास क्यो आए हैं ?'

"मैं फिल्म के लिए कहानी लिखना चाहता हूँ।"

"लेकिन हम क्या बताया था आपने ? हाँ 'साहितकार' हम साहितकारो से कहानियाँ नही लिखवाते।"

'लेकिन आजकल तो बडे बडे साहित्यकार फिल्मो मे लिख रहे हैं।"

'हाँ, जनता ऐसा ही समझती है। लेकिन हम फेमस राईटरो से उनका सिर्फ नाम खरीदते हैं एट्रैक्शन के लिए कहानी नही। उनकी कहानी लेकर दिवालिया थोडे ही होना है हमको।" कहते-कहते एक हल्की सी मुस्कुराहट उनके होठो पर तैर गई।

"फिर कहानी किससे लिखवाते हैं आप ?" मैंने पूछा।

"किसी से भी" लापरवाही से कहा उन्होंने।

"फिर मैं ही क्या बुरा हूँ।"

मेरे यह कहने पर वे कुछ देर चुप रह कर मुस्कुराते हुए कुछ सोचते रहे, फिर बोले—"आप विदेशी उपन्यासों के देशी अनुवाद पढते हैं ?

मैं नही।

वे विदेशी फिल्मे देखते हैं ?

मैं नही।

वे तब तो मुश्किल है आपको चास देना। दरअसल फिल्म के लिए खास तरह की कहानी की जरूरत होती है।

मैं खास तरह की ?

वे हाँ, हमे फिल्म के लिए ऐसी कहानी की जरूरत होती है, जिसमे वास्तव मे कोई कहानी न हो आपको अगर एक मुर्दा दिया जाए तो क्या आप उसकी नाप की कब्र तैयार कर देंगे ?

मैं हा, इसमे क्या मुश्किल है ?

वे लेकिन अगर आपको एक कब्र दी जाए तो क्या आप उसकी नाप का मुर्दा तैयार कर देंगे ?

मैं क्या मतलब ?

वे मतलब यह कि आम-दुनिया मे पहले मुर्दा होता है फिर उसके मुताबिक कब्र बनाई जाती है। लेकिन हमारी फिल्मी दुनिया मे ठीक इससे उल्टा होता है। हमारे यहाँ पहले कब्र होती है, फिर उसकी नाप का मुर्दा तैयार करना होता है। सीधी-सी बात है—कब्र हमारी मुर्दा आपका। आपका मुर्दा हमारी कब्र मे फिट आ गया तो हम उसको यानि कहानी को खरीद लेंगे। हजारो रुपए हम इसी फिटिंग के देते हैं।"

मैं ध्यान से उनका विश्लेषण सुन रहा था। फिल्मी कहानी की विशेषताओं के सन्दर्भ मे वे आगे बता रहे थे—"फिल्मी कहानी प्रारम्भ से अन्त तक की ओर नही चलती बल्कि अन्त से शुरू होकर प्रारम्भ पर खत्म होती है। कहानी का अन्त तय होता है, उसी के अनुसार प्रारम्भ निर्धारित किया जाता है। कहानी के पात्रो का 'फल' निर्धारित होता है, उसी के मुताबिक वे 'कर्म' करते हैं या कहिए कि उनसे कर्म करवाया जा सकता है। मसलन—किसी किरदार को कहानी के अन्त मे मरना

है तो हम उससे कत्ल करवा सकते हैं, डकैती डलवा सकते हैं, बगावत करवा सकते हैं भई जब किरदार को मरना ही है तो उससे कुछ भी करवाया जा सकता है। क्यो ?"

"जी हा" मैंने हा भरी।

'कहानी की टेक्नीक के बारे मे अगर आपको विस्तार से जानना है तो आप ऐसा कीजिए हमारे स्टोरी डिपाटमेंट के इनचाज से मिल लीजिए, व आपको समझा देंगे।" कहकर वे कुछ कागजो को देखने मे व्यस्त हो गए। उनको अपनी उपस्थिति से पूरी तरह बेखबर जान मैं उठ खडा हुआ और उनको धन्यवाद देता हुआ कक्ष से बाहर आ गया।

× × ×

कुछ समय पश्चात मैं उन हजरत के सामने था, जिनको स्टोरी डिपाटमेंट का इन्चाज कहा जाता था। वे मुझे जानकारी देते हुए कह रहे थे—"हम चाहते है कि कहानी चाहे मास्टर की हो या जागीरदार की, जेब कतरे की हो या प्रोफेसर की, सीता के आदश पर आधारित हो या शूपनखा की बेसब्री पर, विज्ञान की हो या मनोविज्ञान की, रामगढ की हो या बम्बई की, उसके निन्यानवे प्रतिशत प्रसग समान होने चाहिए।'

मैं जरा विस्तार से कुछ पहलुओ के बारे मे बताइए न।

वे कहानी मे कम से कम आठ हत्याएँ होनी चाहिए।

मैं जी।

वे कम से कम तीन बलात्कार होने चाहिए, वह भी एक कायदे से।

मैं कायदा ?

वे हाँ कायदा। कायदा यह कि बलात्कार हीरो के अलावा कोई भी कर सकता है और हीरोइन के अलावा किसी के साथ भी कर सकता है। जब तक बहुत जरूरी न हो हीरो हीराइन को इसमे शामिल नहीं किया जाना चाहिए।

मैं जी।

वे कहानी मे एक सुहागरात प्रसग आवश्यक रूप से होना चाहिए।

विवाह के बाद ?
सुहागरात के लिए विवाह हो ही, यह [illegible],
फ्लश-बैक वगैरह किसलिए है आखिर। सुहागरात का दृश्य लिखते समय ध्यान रखना होगा कि नायिका का घूंघट नायक की तरफ हो, दर्शको की तरफ नही। दर्शक ब्लैक से टिकिट घूंघट देखने के लिए नही खरीदते, जलवा देखने के लिए खरीदते हैं, क्या समझे।
यह तो है ही।
कहानी मे एकाध स्नान-दृश्य भी होना चाहिए।
नायक के ?
ओफ्फ नायक मे क्या पडा है जनाब। नायिका को नहलाइए आप तो। लेकिन इसके लिए सडक पर लोटा बाल्टी से नहाने वाला तरीका नही चलेगा। बाथ टब या स्वीमिंग पूल होना चाहिए।
जी।
कहानी मे होली प्रसग भी बेहद जरूरी है।
सास्कृतिक दृष्टि से ?
सस्कृति का होली से क्या रिश्ता है यह तो आप जानो। हमारा मकसद तो बहुत सारी जवान लडकियो को पारदर्शी कपडे पहिना कर उनको भिगोना मात्र है।
जी।
बस यू समझिए कि ऐसी ही कुछ बातें और हैं, जैसे फाइट, इमोशन, सैक्स, डिस्को, फैंटेसी, गीत, रेस वगैरह। मूल कहानी मे जरूरत के मुताबिक इनका प्रयोग किया जाना चाहिए। मूल कहानी जो है, वह सब म एक ही होती है।
इसमे लेखक को अपनी प्रतिभा दिखाने के लिए
प्रतिभा पता नही किसको कहते हैं आप। हमारे हिसाब से तो अलग-अलग तरह के सौ तारो को एक जगह गूथ देना ही प्रतिभा है। आप दिखा सकते हैं इस किस्म की प्रतिभा ?
मुझे तो कुछ मुश्किल सा लग रहा है।

वे आप फिल्मो का भला चाहते है ?

मैं बेशक।

वे तो आप एक काम कीजिए। फिल्मी कहानी लिखने का इरादा त्याग दीजिए। इससे आपका भी भला होगा और फिल्मा का भी। साहित्यकार हैं आप तो साहित्य म ही रहिए। साहित्य की जो गति है, वह आप फिल्मो की क्यो करना चाहते हैं ?

'धन्यवाद' कहते हुए मैं तुरत उठ खडा हुआ और उनक कक्ष से बाहर आ गया। वे अपने काय म पुन व्यस्त हो गए थे।

× × ×

इस घटना क बाद यद्यपि फिल्मी कहानीकार बनन का भूत ता मेरे सर से उतर गया लेकिन फिल्मी दुनिया से मैं निराश नहीं हुआ। मैंने अब फिल्मी गीतकार सगीतकार अथवा दोनो ही बनन के प्रयास का निश्चय किया। इस सदभ मे मैं एक अन्य फिल्म निर्माता से भेंट कर सकन मे सफल हुआ। उनस बातचीत के दौरान मैंने बताया कि मैं अच्छे गीत लिख सकता हूँ।

वे बोले— 'अच्छे से आपका मतलब यदि भजन या गजल से है तो पहले अच्छे की परिभाषा जान लीजिए।'

'देखिए साहित्य म मैं एम० ए० हूँ और

'यही ता सबसे बडी कमी है आप म।" मेरी बात बीच मे काटकर वे बोल पडे—'हमार यहा क रिवाज के मुताबिक अच्छा गीतकार वही हो सकता है जिसन कभी स्कूल का मुह भी न दखा हो। गीत सुनकर नाचने वाले आपकी तरह एम० ए० बम० ए० नहीं होते। आपने किसी प्रोफसर को सडक पर 'बेबी ओ बेबी, तू बन जा मेरी बीबी'' गाते सुना है ?"

"नहीं।"

'किसी जिलाधीश को दफ्तर मे 'लगे पिचासी झटके' गाते देखा है ?"

"नहीं।'

'फिर किसको गाते दखा है आपने ?'

"वो कुछ और ही तरह के लोग हाते हैं ।" मैंने कहा ।

"जी हा, और इनके लिए गीत लिखन वाले मे एक खास किस्म की काबलियत होनी चाहिए। आजकल नई स्टाइल के गीता का चलन शुरू हा गया है जिनको लिखना हर किसी क वस का रोग नही।"

"नई स्टाइल क गीत कैसे ?" मैन पूछा।

"एसे गीत, जिनम शब्द एक भी न हा।"

"विना शब्द का गीत ? वह कैसे बनेगा ?"

"वैसे ही जैसे बिना स्वर के सगीत बनता है, विना घटना के कहानी वनती है।"

"मैं समझा नही।"

"मेरा मतलब ऐसे गीत से है जिसम शब्द न हो, केवल हिचकी, सिसकी, चीत्कार सीत्कार, पुकार, हकार हुंकार वगैरह ही हो। शब्द हों भी तो हाय, उई, ओह उफ्फ जैसे अस्फुट शब्द ही हा।

"लेकिन आप शब्दों वाले गीत लिखवाना क्या नही चाहते ? '

' मेरी मर्जी।"

"फिर भी।" मैंन जार डाला।

वे बोले—' देखिए वात दरअसल यह है कि ये चीज शब्दो से ज्यादा असरदार होती है। गीत मे एक हिचकी या सिसकी स जा बात पैदा होती है वह पचास शब्दा स भी नही हो सकती।"

मैं चाहता था कि उनकी बात का प्रतिवाद कर अपना पक्ष प्रस्तुत करूँ, लेकिन व शब्दविहीन गीत की तारीफ म इतना अधिक बाल गए कि मुझसे कुछ कहते न बना। हारकर मैंन गीतकार बनन का इरादा जो था उसका मुलतवी कर दिया। फिर विपय को वदलन की गरज स मैंने कहा—

"मैं सगीत म भी अच्छी दखल रखता हूँ। आप चाह ता बजाकर सुना सकता हूँ।"

वे रहने दीजिए। अव्वल ता सगीत को मैं देखने की चीज समझता हूँ सुनन की नही। फिर सगीत मुझे फिल्म क दशका क लिए तयार करवाना है, अपन कानो स मेरी काई दुश्मनी नही है।

मैं लेकिन एक फिल्म निर्माता को यह तो जानना ही चाहिए कि कोई संगीतकार किस किस्म का संगीत तैयार करता है ?"

वे जहाँ तक मेरा ख्याल है, संगीत की कोई किस्म नहीं होती। ढोल हमेशा ढम-ढम ही बजेगा, चाहे उसको कल्याण जी आनन्द जी बजाएँ या श्यामजी घनश्यामजी, इससे क्या फर्क पड़ता है फिर भी अगर आप मेरी फिल्म में संगीतकार बनना चाहते हैं तो आपको यह साबित करना पड़ेगा कि आपने किसी लुहार अथवा ठठेरे के यहाँ कम से कम दो बरस काम किया है।"

'इसके बगर काम नहीं चलेगा ?' मैंने पूछा।

"जी नहीं, यह तो बेसिक-क्वालिफिकेशन है।"

इसके बाद अचानक उन्होंने मेरी तरफ से ध्यान समेट लिया और अपने काम में व्यस्त हो गए। मेरे पास कोई चारा न था सिवा इसके कि मैं वहां से उठकर अपना रास्ता नापता।

× × ×

तो जनाब कहानी, गीत और संगीत, इन तीनों ही मोर्चों पर फिलहाल मुझे असफलता हाथ लगी, फिर भी हिम्मत नहीं हारी है मैंने, अभी और बहुत से क्षेत्र बाकी है। देखते हैं क्या होता है।

अफसाना-ए-दिल

कहा जाता है कि कुदरत ने यह कायनात बनाई, कायनात मे इसान बनाया, इसान मे दिल, और दिल मे आगे की बात रहने दीजिए। हमारा मतलब इसी दिल से है। आजकल खुद आदमी से ज्यादा अहमियत उसके दिल की होती है। आदमी बेचारा कुछ नही रहा, दिल ही सब कुछ हो गया।

हालाकि मैंने आदमी के दिल को उस तरह से तो नही देखा, जिस तरह आँख, नाक, कान या होठो को देखा है, लेकिन उसके बारे मे इन फालतू चीजो से ज्यादा सुना है। यह मसला काबिले गौर है कि अमूमन दिखाई देने वाली चीजो के चर्चे उतने आम नही होते, जितने न दिखाई देने वाली चीजो, मसलन दिल के।

मैंने अर्ज किया कि दिल को रूबरू दखने का मौका मुझे नही मिला। इसलिए पूरे यकीन के साथ तो नही कह सकता कि दिल का रग रूप, आकार-प्रकार कैसा होता है। लेकिन फिर भी जो कुछ सुना है, उसके आधार पर दिल पर कई ग्रथ लिखे जा सकते है।

बकौल एक शाइर के—चीर के देखा तो 'कतरा ए-खू' निकला। लेकिन क्या दिल फकत खून का एक कतरा है और कुछ नही ? सवाल यह है।

मेरे ख्याल मे ये हजरत जीव विज्ञान के विद्यार्थी रह होगे, वरना तो दिल की अहमियत वे इस कदर घटाकर बयान नही करते। और बातो से तो यह कही नही लगता कि दिल जिसे कहते है, वह खून के कतर के सिवा कुछ नही है। जमाने के खयालात और बयानात के मुताबिक दिल के मुकाबले की कोई चीज आज तक दुनिया मे बनी ही नही।

दिल के आकार का जहाँ तक सवाल है, सबके दिलो की साइज एक नही होती। किसी का दिल "छोटा" होता है तो किसी का "बडा" किसी के दिल को "दरिया" कहा गया है तो किसी के दिल का "सागर", कई दिल तो दिल नही अच्छे खासे "फ्लैटस" होते हैं, जिनमे कोई मन का मीत या दिल की रानी अपने साजो सामान के साथ आराम से रहती है। कोई बात किसी के दिल म समा जाती है और किसी के दिल में नहा समाती। यह तथ्य इस बात की ओर सकेत करता है कि दिलो की भराव क्षमता भी समान नही होती "ओछा" और 'महान' विशेषणा का प्रयोग भी दिल के लिए किया जाता हैं।

आमतौर पर दिलो की दो स्थितियाँ होती हैं—एक 'खाली" और दूसरी "भरी' कोई जोहराजबी कहती है—"तुम्हारे लिए अब मेरे दिल मे कोई जगह नही है" यानि पहले थी लेकिन अब वहाँ कोइ और एडजस्ट हो गया। दिलो को भरने, खाली करने और पुन भरने का यह सिलसिला चलता ही रहता है। रग भी सब दिलो का एक-सा नही होता। कुछ के दिल "काले' तो कुछ के "उजले" होते है। 'खरे" और 'खाटे' भी दिल होते हैं। दिल के भीतर अनेक वस्तुएँ पाई जाती हैं जिनम प्यार तूफान गम, मलाल, आग, मैल आदि प्रमुख हैं।

आजकल की युवा-पीढी म दिलो का लेन देन काफी बडे पैमाने पर होता है। इस लेन दन की मुख्य विशेषता यह है कि इसमे वस्तु विनिमय क साधन अर्थात मुद्रा का प्रयोग नही होता। ग्रामीण महिलाएँ जिस तरह बाजरे के बदले बाजरा और लहसुन के बदले लहसुन ही देती-लेती हैं उसी तरह यह काय-व्यापार करन वाले भी दिल क बदले मे दिल ही स्वीकार करते हैं, कोई अन्य वस्तु नही।

हालाकि कुछ खास तरह की जगहो पर मुद्रा के बदले मे भी दिल हासिल होता है पर वह कुछ देर के लिए होता है, हमेशा के लिए नहीं। इस लेन-देन मे दिल के बदले मे सिफ दिल देखा जाता है छोटा है या बडा, इसको ज्यादा अहमियत नही दी जाती। पुरुष वग इसमे घाटे म रहता है बढ दिल के बदले मे छोटा दिल लेकर स्त्रियो ने अपने दिल के लिए बार-बार "नन्हा सा" विशेषण का प्रयोग जो किया है उससे जाहिर

होता है कि औरत का दिल मर्द के मुकाबले कुछ छोटा होता है। यह लेन-देन सड़कों पर खुलेआम प्रत्यक्ष रूप से होता है, इसलिए इसमे दलाल भाइयों के लिए गुंजाइश बहुत ही कम है। इस लेन देन के कई तरीके है—

एक तरीका, जो प्राचीन काल से चला आ रहा है, वह है—"दिल हार जाना" यह प्रवृत्ति मनुष्य जाति मे नर एवं मादा दोनों वर्गों मे ही समान रूप से रही है। यह नेक काम पहली नजर म ही मुकम्मल हो जाता है। इधर निगाहे चार हुईं (कई मामलों म तीन भी) और उधर दिल गया हाथ से। लेकिन घटनास्थल पर ही दिल दूसरी पार्टी को नही सभला दिया जाता। यह काम बाद मे इतमिनान से किया जाता है। दिल हार जाने के किस्से वैदिक काल से लेकर 'सत्यकथा-काल" तक भरे पड़े हैं। हारे हुए दिल को दिलरुबा या दिलबर के हवाले करने मे लोगों को जो पापड़ बेलने पड़े, उससे लाखो की तादाद मे चकले बेलन टूट गये।

दूसरा तरीका, जिसका प्रचलन आजकल जोरो पर है वह है—"दिल चुरा लेना" यह चोरी इतनी सफाई से होती है कि मौका-ए-वारदात पर सम्बन्धित व्यक्ति को कुछ पता ही नही चलता। घर जाकर जेबें टटोलते समय जब उसका हाथ छाती पर जाता है तब उसे पता चलता है कि जेब से पर्स की तरह सीने से दिल भी गायब है। वह सोचता है किसी ने चुरा लिया। किसने चुराया इसका निश्चय भी वह कर लेता है।

इसके बाद वह "मेरे दिल की हो गई चोरी" स्टाइल मे इस घटना का जोर शोर से प्रचार करता है। फिर वह दिल चुराने वाले के यहाँ जाकर साफ साफ कह देता है कि उसने उसका दिल चुरा लिया है। चोरी के इकरार के साथ ही दिलों का आदान प्रदान औपचारिक रूप से कर लिया जाता है।

यह तरीका भी पुरुष व महिला दोनों ही वर्गों म समान रूप से पाया जाता है। इसमे कानून अथवा पुलिस का हस्तक्षेप तब तक नही होता, जब तक कि चोरी मे दिल के साथ कोई और वस्तु न हो।

कई भुलक्कड किस्म के महापुरुषो का दिल चवन्नी-अठन्नी की तरह खो भी जाता है। इसका पता चलने पर दिल की खोज शुरू होती है। 'जरा आँखो की तलाशी दे दो' वाली शैली मे गुमशुदा दिल की खोज जिन स्थानो पर की जाती है, उसको जानकर हर कोई दिल के खोने की कामना कर सकता है। दिल यदि किसी नव युवक का खोया है तो वह मिलेगा, किसी नाजनी की रेशमी जुल्फो, अगारे से लबो, झील स गहरी आँखो अथवा किसी मादक अदा, जैसे अगडाई मे।

आइए, अब जरा एक नजर दिल की आदतो और हरकतो पर भी डाली जाए। वैसे ता दिल का यह रुतबा है कि वह जो भी हरक्त कर बैठे उसकी फितरत ही कही जाएगी, फिर भी कुछ ऐसी आदतें हैं, जो सभी के दिलो मे पाई जाती हैं।

दिल की एक आदत है—"धडकना" दिल के धडकने का यह मतलब नही है कि वह अमूमन नही धडकता अपनी आम-रफ्तार से तो वह हमेशा ही धडकता रहता है, पर किसी को देखकर इस रफ्तार मे यकबयक इजाफा हो जाता है। कई मतबा तो यह धडकन खतरे के निशान तक पहुचकर विस्फोटक शक्ल अख्तियार कर लेती है, तब इसकी सदा रेलवे इजिन की मानिंद साफ सुनाई पडती है। इन धडकनो म भी इतनी जगह होती है कि एक या एक से अधिक व्यक्ति इनमे एक साथ बसे रहते हैं।

"मचल जाना" भी दिल की आम-आदत है। मचलने की यह प्रक्रिया धीरे धीरे नही बल्कि एकदम और अचानक होती है। दिलवाले समझाते ही रह जाते हैं कि "धीरे धीरे मचल अ दिले बेकरार' पर वह एकदम ही मचल जाता है। तब कहना पडता है—"देखो मेरा दिल मचल गया तूने देखा और "

दिल मचल जाने के अनेक कारणो का उल्लेख शास्त्रो म हुआ है। मसलन किसी की कोई जानलेवा अदा देखकर मचल जाना फै सी स्टार मे कोई अच्छी-सी चीज देखकर भी दिल मचल जाया करते हैं।

"बैठ जाना' भी दिल की एक आदत होती है। ऐसा किसा हादसे के वक्त होता है, सामान्य रूप मे नही। अब आप पूछेंगे— तो क्या

आमतौर पर दिल खडा रहता है, जो हादसे के वक्त बैठ जाता है ?" इस सदभ म मैं पहले ही अज कर चुका कि मैंने किसी का सीना चीरकर यह मुआयना नही किया कि दिल अन्दर किस 'पोज' मे रहता है, बहरहाल बैठ जाने का मतलब है—अत्यधिक घबरा जाना ।

दिल के डूबने की बात भी कई बार सुनी है । इसमे कोई खास बात नही है । जिनको तैरना नही आता उनका यही हश्र होता है ।

दिल के उपयोग का जहाँ तक सवाल है यह तो आदमी-आदमी पर निभर करता है कि वह अपने दिल को किस काम मे लेता है। उपयोग बहुत से हैं । जैसे दिलो के लेनदेन मे दिल ही काम आता है । कुछ दिलो का उपयोग रहन के लिए मकानो के रूप मे भी होता है मालिकाना-हैसियत से भी और किरायेदार की हैसियत से भी ।

हमारे यहाँ दिला को जलाने का रिवाज भी काफी पुराना है । एक शायर फरमा गये हैं कि वे शाम होते ही शमा बुझा देते थे क्योंकि जलाने के लिए वे दिल को ही काफी समझते थे । उनके इस नये प्रयोग से दो बातों का पता चला—

एक तो यह कि दिल जलता भी है और दूसरी यह है कि उसकी रोशनी ट्यूब-लाइट से कम नही होती । इसमे बैठकर गजल वगैरह आसानी से लिखी जा सकती है । कुछ दिलो मे गीलापन अधिक होता है । इसलिए वे सुलग तो जाते हैं पर ठीक से नही जलते । ऐस दिलो से हमेशा धुआ उठता रहता है । किसी किसी के दिल इस मामले मे बेकार भी होते है । शाहरो ने ऐसे दिलो का भी आखा देखा हाल लिखा है, जो जलते हैं फिर भी रोशनी नही होती । कहने की जरूरत नहीं कि ऐसे दिल किसी काम के नही होते ।

ज्यादातर दिल जलाने से ही जलते हैं, पर कुछ दिल एसे भी होते हैं, जो अपने आप ही जलने लगते हैं, ऐसे दिला का इलाज चिकित्सा विज्ञान के लिए एक समस्या है । हमारे डाक्टरो की तरफ से अभी तक अधिकृत रूप से यह घापित नही किया गया है कि जले हुए दिल पर "बरनौल" असरकारक होती है अथवा नही ?

आखिर मे आपसे मैं यही कहूगा कि दिल वो चीज है, जिसको

सम्भालने की जरूरत हर वक्त रहती है, क्योंकि इसके मचलने, बैठ जाने, खो जाने या चोरी चले जाने का खतरा हमेशा बना रहता है। दिल बहुत ही नाजुक चीज है। इसको हर तरह के झटके से बचाकर रखिए। कहते है कि दिल टूटने की आवाज नहीं होती, पर उससे आसमान तक हिल जाता है। ऐसी स्थिति से बचकर रहिए। अपने लिए न सही, आसमान की शांति व्यवस्था के लिए ही सही।

पुराने जमाने के एक शायर फरमा गये हैं कि—"ले आएंगे बाजार से दिलो जां" और मुमकिन है—उस जमाने में इस किस्म के बाजार रहे हों लेकिन वे दिल के बाजार उन्हीं लोगों के साथ रुखसत हो गये। अब दिल न तो बाजार में मिलता है और न टूट फूट होने पर उसकी मरम्मत होती है।

प्रसव का फिल्मी अन्दाज

फिल्मो म हमारी उतनी रुचि तो नही है, जितनी अधिकारी की अपनी सेक्रेटरी के व्यक्तिगत जीवन मे हुआ करती है। लेकिन फिर भी एक खास तरह की फिल्मे हम अमूमन देख ही लेत है। खास तरह स तात्पय उन फिल्मो से है, जि ह देखने के लिए कोई हममे आग्रह कर सिनेमाघर तक ले जाता है। इस मामले मे हम हमारी सुविधानुसार कभी फिल्म को और कभी आग्रहकर्ता का प्रधनता देकर उस फिल्म क निर्माता की आर्थिक स्थिति को सुदढ करन मे अमूल्य (जिसका कोई मूल्य नही) यागदान दे डालते हैं।

कुछ खास चीजा का छोड कर बाकी सभी चीजा पर टीका टिप्पणी करना हमारे सदगुणो मे सम्मिलित है। जहा तक फिल्मो का सवाल है, उन पर टिप्पणी हम बाहर भी करते हैं (जैस इस वक्त कर रहे है) और सिनेमाघर के भीतर भी। भीतर वाली टिप्पणियाँ इस तथ्य पर आधारित हाती है कि आगे पीछे वाला की भौगोलिक स्थिति कैसी है और उनके साथ वालो का शारीरिक सौष्ठव किस प्रकार का है।

फिल्मो म दिखाई जाने वाली लगभग सभी चीजें हमे पसद आती हैं। यहाँ तक कि कैबरे और बलात्कार के दश्य भी हमें बुरे नही लगते। लेकिन इन सबसे बढ कर जिस चीज को हम देखन जाते है वह है—प्रसव अर्थात् डिलीवरी। फिल्मो मे यह प्रसव इतना आसान होता है कि मा बनने की अभिलाषा रखने वाली युवतियो को इस तरफ स बेखटके रहने का आश्वासन स्वय हमारी ओर से दिया जा सकता है।

फिल्मी नायिकाओ व अन्य महिलाओ मे से हम उन रूढिवादी

स्त्रियों को उतनी अहमियत नहीं देते जो पुराने ढर्रे पर चल कर विवाह के बाद माँ बनती है। क्योंकि हमारे विचार में इसमें कोई तीर मार लेने जैसी बात नहीं है। और फिर है भी यह एक बेहद पुराना, परम्परावादी और निहायत घिसापिटा तरीका। अधिकांश फिल्म विवाह जैसे खतरनाक मोड़ पर आकर समाप्त हो जाती हैं। यह निर्देशक की ही समझदारी कहलाएगी कि वह अब तक के रोमांस से बने जायके का यह गम्भीर दुघटना दिखा कर कसैला नहीं करना चाहता।

खैर हम फिल्मी प्रसव की चर्चा कर रहे थे। विवाह से पूर्व माँ बनने का परम सौभाग्य प्राप्त करने वाली आदर्श नायिकाएँ (या अन्य महिलाएँ) डिलीवरी के पावन पर्व पर प्राय अकेली ही रह जाती हैं। उनकी इस स्थिति का जिम्मेदार व्यक्ति, जो अमूमन नायक होता है, वहाँ उपस्थित नहीं रहता। यह वही व्यक्ति होता है जो मूसलाधार बरसात की रात में नायिका को एक पुराने खण्डहर में ले जाता है। जितनी देर में नायिका अपने वस्त्र निचोड़ कर सुखाती है उतनी देर में यह हजरत आग जला लेते हैं। फिर नायिका के साथ मिल कर ये एक रोमांटिक गीत गाते हैं जिसमें आम तौर पर 'भीगा बदन,' 'भीगी लट,' 'जिस्म की गर्मी,' 'पिघलना' इत्यादि शब्दों का खुल कर प्रयोग किया जाता है, उसके बाद वही होता है जो इस नाचीज की राय में तो नहीं होना चाहिए पर कहानी को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक होता है। उस वक्त किए गए उस पुनीत कार्य का परिणाम इस वक्त प्रसव के रूप में आता है।

प्राय सभी फिल्मी बच्चे प्रयोगवादी एवं क्रान्तिकारी होते हैं। इसलिए परम्परागत वातावरण में पैदा होना उनके उसूलों के खिलाफ है। इस क्षेत्र में चिकित्सा विज्ञान ने जो औषधियाँ व उपकरण मानव के लिए जुटाए हैं उनका मुहताज कोई भी फिल्मी बच्चा नहीं होता। हमारे बड़े बड़े सुविधा सम्पन्न नगरों में कई बार इन सारी सुविधाओं के बावजूद कोई कोई बच्चा अपने स्वागत को ठोकर मार कर परलोक के लिए कूच कर जाता है। आश्चर्य तो तब होता है जब बिना डाक्टरों के कुछ किए ही ऐसा हो जाता है। यह सरासर हमारे व आपके चिकित्सा विज्ञान की बेइज्जती है।

लेकिन फिल्मो मे हमने किसी नवजात शिशु को दम तोडते नही देखा। ऐसा होना भी नही चाहिए, क्योकि दशको की उम्मीद एकमात्र उसी पर तो टिकी होती है। न जाने उसके निर्माण म किस किस्म की सामग्री का प्रयोग किया जाता है। डिलीवरी के समय निर्देशक ऐसी हालत पैदा करता है कि वह वीर माता नितात अकेली रह जाती है। यद्यपि कई सठियाए बुजुग काफी समय पहले ही समाज मे बदनामी का डर दिखा कर उसे मुसीबत से छुटकारा पा लेने का नेक मशविरा दकर जनसख्या गणको के पेट पर लात मारना चाहते ह।

पर वह वीर माता बुजुर्गों की इस सलाह को निदयता के साथ ठुकरा देती है। वह कहती है, "कुछ भी हो, समाज चाहे कुछ भी कहे, मैं इसको जम दूगी इसको पाल कर बडा आदमी बनाऊँगी मैं अपने प्रेम की इस निशानी को अपने हाथो नही मिटा सकती। यह नही होता तो मैं कब की आत्महत्या कर चुकी होती।"

बाद मे पता चलता है कि उस वीर माता का निणय सही था। बुजुर्गों की सलाह में कोई दम न था। इस तथ्य से बुजुर्गों की सलाह के सामने कई प्रश्न चिह्न खडे हो जाते हैं। समाज भी क्या आफ्त है। वह अविवाहित या विधवा महिला से तो कई बार यह पूछता है कि तुम्हारे बच्चे के बाप का क्या नाम है, किन्तु किमी कुआरे या विधुर से यह कभी नहीं पूछता, "उसका क्या नाम है जो तुम्हारी इस बच्ची की मा है ?"

बुजुर्गों व समाज से तो हम फिर कभी निबटेंगे। बहरहाल, हम बता रहे थे कि प्रसव बेला मे माँ एकाकी रह जाती है। आम तौर पर उसका घरबार भी कोई परोपकारी साहूकार अपने कज के बदले मे छीन चुका होता है। फिल्मो मे साहूकार से ही कज लिया जाता है। बैंको से क्यो नही, इस पर तो अथशास्त्री ही विचार करेंगे। मेरा निवेदन यह है कि ऐन डिलीवरी के वक्त न कमरा, न बिस्तर न डाक्टर, न दवाई, न बडी बूढी औरतें कुछ भी नही होता। फिर भी ये बच्चे सरे राह चलते डके की चोट चौराहे पर अवतार लेते हैं।

कई बार ऐसा भी होता है कि कोई स्त्री प्याऊ पर पानी पीने के बाद एक पेड के सहारे बैठी और बच्चे का जम हो गया। यहाँ तक कि

अगर घोडे के तांग (घोडे के मरने पर आदमी खींचता है) जसी घटिया चीज म आपातकालीन यात्रा क दौरान भी हमन प्रसव होत देखा है। इस पर भी तुर्रा यह कि कोई भी माँ का लाल मरियल या कमजोर नही होता बल्कि एकदम मोटा ताजा अमूल स्प्रे' या 'बोनवीटा' का माडल लगता है। विश्वास ही नही होता कि हजरत इस जहान मे अभी अभी तशरीफ लाए हैं।

एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि फिल्मो म अधिकतर लडके ही पैदा होते हैं। लडकियो को तो अपवादस्वरूप ही अवसर प्राप्त होता है। प्रगतिशील एव समान अधिकारो की माँग करन वाली महिलाओ के लिए यह चितन का नवीन विषय हो सकता है।

आए दिन समाचार पत्रो म पढन को मिलता है कि अमुक स्थान पर एक नवजात शिशु का शव मिला। कितना बेसब्र होता है मरदूद। इतनी जल्दी मर जाता है। उसस इतना भी नहो होता कि उधर से गुजरने वाले किसी व्यक्ति का इन्तजार करे। उसकी माँ भी उसे न जान किस सुनसान मे छोड कर चली जाती है कि कोई उधर स गुजरता ही नही। भूलेभटके यदि कोई गुजरता भी है तो वह बजाए उसको उठा कर अपने घर ले जान के पुलिस को सूचना देता है, बेवकूफ।

फिल्मो मे इस तरह फेंक दिए जाने से कोई बच्चा आज तक नही मरा। बच्चे की माँ जब बच्चे को चूम कर कही छोड कर जाती है तो उसके फौरन बाद ही कोई अधेड आयु वाला एक खास तरह का व्यक्ति उधर से गुजरता है। इस प्रकार के अधिकाश व्यक्ति विधुर होते हैं। काम काज तो पता नही वे क्या करते हैं पर होत काफी धनवान हैं। इसलिए बिना वजह इधर-उधर घूमत रहत हैं। उस खास तरह के व्यक्ति की श्रवण शक्ति का मिजाज कुछ इस तरह का होता है कि पुलिया पर चाहे उस ट्रेन की सीटी भी न सुनाई पडे, पर इस मौके पर उसे इस नवजात शिशु का नवजात रुदन भी मीडियमवेव की भाँति एकदम साफ सुनाई पड जाता है। बच्चा भी कमबख्त उसी वक्त जोर से रोता है। जसे उसे यह डर हो कि यदि वह जोर जोर स गला फाड कर नही चिल्लाएगा तो यह भला आदमी उसे अपने साथ नहीं ले जाएगा और

उसे यहीं पड़े-पड़े दम तोड़ देना पड़ेगा।

इसके बाद वह व्यक्ति झट से बच्चे के पास आकर कहता है, "अरे, यह तो बच्चा है।" जैसे उसे कोई हाथी होने की सम्भावना थी। इसके बाद 'कितना सुन्दर बच्चा है" कहते हुए वह उसको उठा लेता है। फिर दो-चार श्लोक बच्चे के अप्रस्तुत माता-पिता की प्रशंसा में प्रस्तुत कर उसे अपने साथ ले जाता है। उसके घर एक अदद बच्ची होती है जो उसकी पत्नी (अधिकांशतः दिवंगत) की प्रथम (विश्वास के आधार पर) व अन्तिम (निश्चित रूप से) निशानी होती है।

बच्चे को घर उठाकर ले जाने वाले व्यक्ति को कानून नाम की किसी चीज की कोई जानकारी नहीं होती। इसलिए वह बच्चे की सूचना पुलिस विभाग को नहीं देता। ऐसा करके संभवतः वह ठीक ही करता है क्योंकि बात अगर पुलिस तक पहुँच गई तो वहां एक बाल की खाल पर से इतने बाल निकाले जाएँगे जितने सारी चमड़ी में भी न होंगे।

हमारे शहर में इसी तरह की एक वारदात हुई। एक नवजात शिशु का शव बरामद हुआ। पुलिस ने आकर तफ्तीश की और बतौर शुबह के एक खातून को गिरफ्तार कर ले गई। बाद में मालूम हुआ कि वह उत्पादन किसी और महिला का था, उस खातून का नहीं। तभी उसको बाइज्जत बरी करने का निश्चय किया गया। पर पुलिस वाले चाहते हुए भी बरी नहीं कर सके क्योंकि वह पुलिस के उत्तम श्रेणी के नैतिक चरित्र से प्रभावित हो अपराध स्वीकार कर चुकी थी।

शुक्र है कि हमारी फिल्मों में पुलिस का हस्तक्षेप न के बराबर होता है। यह एक संतोष का विषय है, नहीं तो प्रसव किसी और को होता, बादाम किसी और को खिलाए जाते। बच्चा फेंक कर जाती साड़ी वाली और पकड़ी जाती मैक्सी वाली। हम तो कोई खतरा नहीं लेकिन मंत्रियों व उच्चाधिकारियों की भूतपूर्व प्रेमिकाओं का जीना मुश्किल हो जाता। हमें उम्मीद करनी चाहिए कि भविष्य में भी फिल्मों में पुलिस का उतना ही हस्तक्षेप होगा जितना वर्तमान समय में है।

[मुक्ता (प्रथम) अक्तूबर, 1981]

मुहावरो का आधुनिकीकरण

मेरे एक मित्र हैं, नाम नही बताऊँगा उनका। कॉलिज और विश्वविद्यालय मे हम दोनो साथ साथ पढ़े है। एम०ए० करने के बाद वह शोध करना चाहते थे, लेकिन प्रवेश नही मिला। यद्यपि मेरे यह मित्र इसे अपना दुभाग्य मानते हैं पर मैं तो इसे विश्वविद्यालय का ही दुर्भाग्य कहूँगा कि वह एक अत्यन्त उच्च कोटि के 'रिसच स्कालर' से वचित रहा। उन्होंने अब तक जितनी शोधपूण बातें मुझे बताई हैं, यदि वे किसी उपयुक्त पात्र को बताई होती तो वह कब का पी०एच०डी० कर चुका होता।

मरे यह मित्र जन्म से ही शोध प्रवृत्ति के और प्रयोगवादी हैं। उनके बारे म उनकी माताजी से मुझे ज्ञात हुआ कि वह बचपन स ही पलग पर सिरहाने की ओर पाँव करके साते है बजाए उठने के बाद नहान के, सान से पहले ही नहा लेते हैं। विश्वविद्यालय तो उन्होंने छोड दिया, किन्तु उनकी शोध प्रवत्ति ने उनका साथ नही छोडा। यह मुमकिन भी नही था, क्योंकि यह प्रतिभा विश्वविद्यालय की देन नही बल्कि जन्मजात थी। अब तो वह इसमे इतनी प्रगति कर चुके हैं कि सरे राह चलत चलते ही नवीन शोध कर लेते हैं। कई खाजें ता उन्होंने मेरे सामन मेरे देखते देखते ही कर डाली।

यद्यपि वह दुबले पतले हैं पर लगते बहुत आकषक है। बगुले क पखो सा श्वत कुर्ता और पाजामा पहनते हैं। 'सुपर रिन की सफेद चमकार' हमेशा उनके तन पर मौजूद रहती है, कभी पान की पीक का एकाध छीटा लग जाए तो बात दूसरी है। नेत्रो का चश्मा जब कभी घुघराले बालो की लट मे ढक जाता है, तब वह महान साहित्यकार की

शक्ल अख्तियार कर लेते हैं। एक बडा सा झोला वह हमेशा बगल मे लटकाए रखते हैं, जिसमे क्या-क्या होता है, कदाचित स्वय उन्ह भी ज्ञात नही होता। वह कवि भी हैं और शायर भी, इतिहासकार भी हैं और अथशास्त्री भी, हैं दाशनिक भी और विचारक भी। राजनीति और विभिन्न खेलो का भी उन्हे समुचित ज्ञान है।

प्राय रोज ही वह मेरे यहाँ पदार्पण कर मेरी कुटिया को पवित्र करते हैं। मैं भी 'आधुनिक सोमरस' से उनका सत्कार कर अपना-परलोक सुधार लेता हूँ। मुझे उनके आने से कोई शिकायत नही है, किन्तु वह अक्सर आगमन के पश्चात गमन के विचार को विस्मृत कर जाते हैं। तब मुझे कुछ खीझ-सी होती है और मैं उन्ह अप्रत्यक्ष रूप से याद दिलाने के लिए कहता हूँ, "चाय और चलेगी ?"

"नही, अब तो चलेंगे।" उनको याद तो आ जाता है कि उनको जाना भी है, किन्तु फिर भी वह वही चिपके रहते है।

उनकी शोधपूण और प्रयोगवादी बातें वैसे तो नवीन, मनोरजक और सुरुचिपूण होती हैं, पर कभी-कभी वह किसी विषय पर बल्कि कहिए नीरस विषय पर जब ज्यादा दूर निकल जाते है, तब मैं ऊब कर उन्हें टोक देता हूँ। ऐसे ही एक दिन 'नायिका भेद' की चर्चा के दौरान मैंने उक्ता कर कह दिया था, "यार तुम भी क्या ऊटपटाग बातें करते हो।"

बस फिर क्या था, वह मेरी इस बात की दोनो टागें पकड कर बुरी तरह घसीटने लगे। बोले, "तुम्हें ज्ञात है, ऊटपटाग शब्द की व्युत्पत्ति कसे हुई ?"

मेरे गदन हिला कर अनभिज्ञता प्रकट कर दने पर वह मुझे समझाने लगे, "ऊटपटाँग शब्द की व्युत्पत्ति हुई है ऊँट पर टाग रखने की बात स।"

"ऊँट पर टाँग ?" मैं आश्चय मे आकर बोला।

"हाँ," वह आगे बोले, "ऊँट पर टाग रखी ही नही जा सकती। यह बिल्कुल असम्भव है। अथवा इस प्रकार समझो कि ऊँट पर टाँग रखने

की बात में कोई तुक नहीं है, तथ्य नहीं है। इसी प्रकार जो बात तथ्य-हीन हो बेतुकी हो, उसे ऊटपटाँग कहते हैं।"

उस दिन मैं उनके व्याकरण ज्ञान और शोध प्रवृत्ति का लोहा मान गया था। मन ही मन उनकी प्रतिभा का कायल होकर उनको अपना साहित्यिक गुरु मान कर नत मस्तक हो गया था।

एक दिन मैं बैठा बैठा अपने कुछ अधूरे लेख और कविताएँ देख रहा था कि वह तशरीफ ले आए। आकर वह मेरी रचनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करने लगे। अधूरी रचनाओं का पूर्ण निरीक्षण करने के बाद उनको एक ओर रखते हुए वह मुझसे बोले "हिन्दी में बहुत-सी कहावतें और मुहावरे ऐसे हैं, जिनका परिष्कृत कर और भी लाक्षणिक बनाया जा सकता है।"

अपने कथन का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए वह आगे बोले, "खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है, इस बात में कोई विशेष बात नहीं है। इसको 'यदि खरबूजे को देखकर तरबूज भी रंग बदलने लगे' इस प्रकार से कर दिया जाए तो इसकी लाक्षणिकता में कई गुना वृद्धि हो सकती है। इसी प्रकार 'आम के आम और गुठलियों के दाम' वाली कहावत में यदि 'छिलकों के इनाम' और जोड़ दिया जाए तो कहने में और ही आनन्द आएगा।'

काफी लम्बे व्याख्यान के बाद वह कुछ रुके तो मैंने संतोष की साँस ली। किन्तु वह शीघ्र ही आगे बोल पड़े—'गद्य लेखन में कुछ कहावतों का प्रयोग किया जा सकता है। आश्चर्य प्रकट के लिए या असंभव स्थिति के लिए 'गंजे की जेब में कंघी' का प्रयोग किया जा सकता है। कंजूसी के लिए 'दस निगलना एक उगलना', एक नया मुहावरा बनाया जा सकता है।"

'काफी लाक्षणिक है दोनों,' मैंने उनको उत्साहित करते हुए कहा।

इस पर वह आगे बोले, 'कुछ मुहावरे अब पुराने हो चुके हैं। घिस चुके हैं उनके स्थान पर नए मुहावरों व कहावतों का उपयोग करना चाहिए, जैसे 'चोली दामन का साथ' वाली कहावत के स्थान पर 'लेटर इनक्लोजर का साथ' या 'टायरट्यूब का साथ' का प्रयोग किया जाए

तो यह सामयिक तो होगा ही, प्रयोगवादी भी होगा, क्यों ?" अपनी मुखाकृति को प्रश्न चिह्न का रूप प्रदान करने का प्रयास करते हुए उन्होंने मुझसे पूछा।

"हाँ, बिलकुल ठीक है," मैंने कहा। मैं उनकी बातें सुन रहा था और एक पत्रिका के पन्ने भी पलट रहा था, इसलिए वह बीच-बीच मे रुक कर मुझसे कुछ न कुछ पूछ लेते थे।

'गद्य की चौकी' फलाँग कर अब वह 'पद्य के किले' पर चढ गए। बोले, 'गद्य की भाँति पद्य में भी कुछ नए प्रयोग किए जा सकते हैं। यदि लेखक बनना चाहते हो तो एक बात की गाँठ बाँध लो, जो पहले लिखा जा चुका है, उसको लिखने से कोई लाभ नहीं जिस ढंग से लिखा जा चुका है, उसकी पुनरावृत्ति में कोई सार नहीं। कवि को अधिक आदर्शवादी नहीं होना चाहिए, थोड़ा यथार्थवादी, सामयिक और प्रयोगवादी होना चाहिए।"

कुछ रुक कर वह आगे बोले, "बिजली बारह महीनों में मुश्किल से पौने दो महीने चमकती है। फिर प्रत्येक मुस्कराहट को बिजली की उपमा देने में कौन सी सार्थकता है ? दाँतों की तुलना खरबूजे के बीजों से करना अधिक उचित है, बजाए मोतियों के। मोती मिलते ही कहाँ है आजकल ?"

स्वर में तेजी लाते हुए वह कहने लगे, "करकमल, मुखकमल, चरणकमल भला क्या तुक है इसकी ? क्या-मुख, हाथ, पाँव सब एक ही आकार प्रकार के होते हैं ? क्या मुख में और पाँव में कोई अन्तर ही नहीं, जो यह भी कमल और वह भी कमल ? मैं कहता हूँ, मुख में और कमल में जितनी समानता है, उससे कहीं अधिक समानता तो मुख में और खरबूजे में है। इसी प्रकार सुवासित कोमल कुन्तलों की उपमा विषैली नागिन से देने में कौन सा शृंगार है ? केशों की तुलना दूब से अधिक सामयिक है अपेक्षाकृत बादल के। हाथों की उपमा ककड़ी और पाँवों की लौकी से देने में भी कोई हानि नहीं है। दुनिया में केवल एक हिरणी ही तो नहीं है, जिसकी आँखें सुन्दर होती हों, तुमने भैंस के बच्चे की आँखें देखी हैं ?" उन्होंने मुझसे पूछा।

'हाँ," मैंने कहा।

'तो फिर तुमको यह तथ्य स्वीकार करना होगा कि भैंस के बच्चे की आँखें बहुत सुन्दर होती हैं। कदाचित हिरणी से भी अधिक सुन्दर। तुमने हिरणी की आँखें देखी हैं ?"

"मैंने तो हिरणी दूर से भी नहीं देखी अभी तक, फिर उसकी आँख यहाँ से देखता ?" मैंने कहा।

'फिर जो वस्तु तुमने देखी नहीं, जानते नहीं, उससे तुलना करने में क्या लाभ ? जिसने तुम्हारी तरह कभी हिरणी देखी ही नहीं, वह 'मृगनयनी' का तात्पर्य क्या खाक समझेगा ? इसी प्रकार "

'चाय और मंगाऊँ ?" मैंने पूछ लिया था।

"नहीं अब तो चलेंगे।" उन्होंने वही पुराना वाक्य दोहराया, किन्तु अब की बार कहने के साथ ही खड़े होकर उन्होंने एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। उस दिन वह सचमुच चले गए।

आजकल मेरे यह मित्र बाहर गए हुए हैं। पहले तो मैंने सोचा था, चलो अच्छा हुआ अब आराम से बैठूंगा, पर अब मैं उनके बिना बोर होने लगा हूँ। मुझे लग रहा है कि यदि वह शीघ्र ही आकर मुझसे नहीं मिले तो मैं काफी पिछड़ जाऊँगा।

[मुक्ता (द्वितीय) अगस्त, 1980]

बुद्धिजीवी होने के लिए

मेरे एक घनिष्ठ मित्र हैं। घनिष्ठ यू कि मैं एक दिन मे दस बार उससे दूर रहने की सोचता हूँ और वे बीस बार मेरे पास न आने का प्रण करते है। लेकिन ऐसा हो नहीं पाता, क्योकि हम घनिष्ठ है। हमारे परस्पर लगाव का मुख्य कारण यह है कि वे मुझे पसद नहीं करते और मैं उन्हे। यही वह पहलू है, जो हमारे दरम्या घनिष्ठता को बरकरार रखे हुए है। पहलू वैसे और भी है। मसलन वे मुझसे सहमत नही होते और मैं उनसे। मैं उनकी जड़ें खोदता हूँ और वे मेरी। मैं उनको कभी जमने नही देता तो वे हमेशा मुझे उखाड देते है, वे मेरी बुराई करते हैं तो मेरे विचार भी अच्छे नही है उनके प्रति। ये मुझे कुछ नही समझते और मैं उनको। घनिष्ठता की वजह से मन ही मन मैं उनको गालियाँ देता हूँ और वे मुझे, लेकिन ऊपर से वे मेरी इज्जत करते ह और मैं उनकी इज्जत करता हूँ। और इस प्रकार हम दोनो एक दूसरे की काफी इज्जत कर लेते हैं।

पिछले दिनो मेरे इन मित्र के दिमाग मे पता नही यह आशका कैसे घर कर गई कि लोग उनको बुद्धिजीवी नही समझते। मैंने कहा—अमा छोडो भी यार क्या फालतू की बात लेकर बैठ गये। आप अगर बुद्धिजीवी हैं तो रहेंगे ही। कोई ऐसा तो है नही कि इसके लिए आप किन्ही दो राजपत्रित अधिकारियो से प्रमाण-पत्र लेकर अपनी कमीज पर चस्पा करें। और फिर लोगो के न मानने से फर्क भी क्या पडता है आपकी हैसियत पर। मत मानने दो उनको। इस पर सिगरेट का ढेर सारा धुआ उगलते हुए वे कहने लगे—नही यार, कोई क्या है। यह माने

नही रखता बल्कि लोग किसी को क्या आँकत हैं, यही असली चीज है आज के जमाने मे।

इसमे दोष मुझे तो लोगो की नजर मे ही लगा, क्योकि वे तो पूरा प्रयास करत है विशुद्ध बुद्धिजीवी दिखाई दने का। मसलन लगातार सिगरेट पीते हैं (पिछली से अगली सुलगाकर), सुरा-सेवन नियमित रूप से करते हैं (महीने के आखरी कुछ दिनो को छोडकर), रात्रि को देर से सोते है और सवेरे दर स जागते हैं, सर के बालो मे कभी कभी नही करत, पैदल आते जाते हैं (व्हीकल को विलासिता मानते है), जूतो म मोजे नही पहनते और मोजो के ऊपर कभी जूते नही पहनते। अंग्रेजी (भाषा) की पुस्तकें खरीदते है और हिन्दी की पढते है, वार्तालाप मे कर्ता और क्रिया के अलावा हर शब्द अंग्रेजी से लेते हैं। राजनीति, क्रिकेट एव फिल्मो पर चर्चा अवसरानुकूल तो दशन साहित्य और मनोविज्ञान पर अमूमन करते है। शिक्षा पद्धति की आलोचना करते हैं, व्यवस्था को कोसते हैं, वेश्याओ की बडाई करते हैं सक्षेप मे वह सब करने का प्रयास वे करते है, जो (उनके हिसाब से) एक बुद्धिजीवी को करना चाहिए।

बुद्धिजीवी होने की कुछ कसौटियाँ तो उनकी ऐसी हैं जिनको "विशिष्ट' अथवा 'विलक्षण" जैसा कोई विशेषण दिया जा सकता है। जसे—वे भोजन बनवाने के लिए एक (युवा) नौकरानी रखते हैं, लकिन बतन वे स्वय ही साफ करते हैं। उनक अनुसार यह "विशिष्ट बुद्धिवाद" है। अपनी बनियान अण्डरवियर और रूमाल जसी चीजें वे धोबी से धुलवाते हैं, लेकिन बैड शीट और पीली कवर जैसी चीजें वे स्वय धोते हैं। यह उनके हिसाब से "उच्च श्रेणी का बुद्धिवाद' है। अण्डे स वे परहेज करते हैं लेकिन चिकन मजे से खाते है। क्योकि वे भ्रूण हत्या का पाप और जीव हत्या का स्वाभाविक मामते हैं। इसे वे 'दाशनिक-बुद्धिवाद' का नाम देते है।

सभी प्रकार की कलाओ पर वे चचा करते हैं, विवाद करते हैं, तक प्रस्तुत करते हैं आलोचना करते हैं और जरूरत पडे तो निणय भी देते हैं। फिल्मो के सदभ मे ओमपुरी का अभिनय उनको बचकाना लगता

है, जबकि जितेन्द्र का अभिनय वे सबसे अच्छा मानते हैं। गोविन्द निहालनी और महेश भट्ट के बारे मे उनकी राय है कि उनको परचून का दूकानदार होना चाहिए था। खुशबू उनको बूढी लगती है तो श्रीदेवी को वे सुन्दर नही मानते। लता मगेशकर की आवाज को वे कर्कश करार देते हुए नाजिया हसन की प्रशसा करते है। शेरन प्रभाकर और उषा उत्थुप का स्वर उनको जोगनियो जैसा लगता है तो हरिओम शरण की गायकी पर वे डिस्को का प्रभाव बताते हैं। भप्पी लाहिडी का सगीत उनको शास्त्रीय लगता है तो मदन मोहन का ऊटपटाग। कालीदास के बाद वे केवल एक आनद बक्शी की ही छवि स्वीकारते हैं। उनका कहना है कि न तो रवि शकर को सितार बजाना आता है, न बिस्मिल्ला खाँ को शहनाई और न ही गोपाल को बासुरी। चौरसिया पिकासो को वे एक अच्छा कार्टूनिस्ट मानते हैं, किसी जमाने का।

भारत के अधिकाश साहित्यकारो को तो वे साहित्यकार मानते ही नही। इस सदर्भ मे उनका प्रमुख कथन होता है—सब स्साले नकल मारते हैं इगलिश लिटरेचर की। अपनी टिप्पणियो मे वे कीटस, चेखव, शली, गार्की, शेक्सपियर, आस्कर वाइल्ड सार्त्र जैसे भारी भरकम नाम एक ही सास मे बोल जाते हैं। दरअसल विदेशी साहित्य एव साहित्यकारो पर चर्चा अथवा टिप्पणी करने के लिए वे अपने आपको अधिकृत मानते हैं, क्योकि बी०ए० मे उनके जो एच्छिक विषय थे उनमे से एक अंग्रेजी साहित्य भी था।

अपनी अधिकाश टिप्पणियो के पीछे उनका तर्क होता है कि अमुक बात वे अमुक कृति के आधार पर कह रहे हैं। वह अमुक कृति कई मर्तबा उनकी पढी हुई है, क्योकि वह उनके पाठयक्रम मे थी। यदि इस बात को सत्य माना जाए तो कहना होगा कि जिन दिनो उन्होने बी०ए० किया उन दिनो अंग्रेजी साहित्य की लगभग पचास कृतियाँ उनके पाठयक्रम मे शामिल थी।

एक बार हम बहुत से मित्रो ने उनसे आग्रह किया कि वर्तमान भारतीय लेखको मे से सर्वश्रेष्ठ कौन है। यह बतायें। इस पर पहले तो वे यही मानने को तैयार नही हुए कि भारत मे कोई लेखक भी है। फिर

उन्होने एक ऐसा नाम बताया, जो हमने पहली बार सुना था। वह अग्रेजी मे लिखता है, उन्होने कहा था।

शिक्षा के सदभ मे वे वतमान शिक्षा प्रणाली को निरथक मानते हैं। सह शिक्षा को वे आदश व्यवस्था मानते हैं और सह शिक्षा के इतने भयकर समथक हैं कि कन्या महाविद्यालयो को बस्तवलो मे तब्दील कर डालने का मशविरा देते हैं। विशेषाधिकार प्राप्त उच्चाधिकारियों को वे सर्वाधिक दीन-हीन समझते हैं। भिक्षावृत्ति के वे सख्त खिलाफ हैं लेकिन चदा खूब देते हैं। मानवीय मूल्यो मे गिरावट एव सामाजिक प्रतिमानो के प्रति प्रतिबद्धता का हनन देखकर वे हमेशा क्षुब्ध रहते हैं। और जब वे क्षुब्ध न हो तो इसका मतलब होता है कि या तो वे अस्वस्थ हैं या नशे मे।

सामाजिक सुधार के सदभ मे वे कहते हैं—मैं कोई महात्मा बुद्ध या महावीर स्वामी नही हूँ जो ध्यान लगाऊँ या तपस्या करूँ। मैं आम आदमी हूँ, ससार को आदश बता सकता हूँ, स्वय आदश बनू, यह रामकृष्ण-परमहस वाला काम मुझसे नही होगा। उनके अनुसार— समाज के लिए कौन सी बुराई कितनी खतरनाक साबित हो सकती है, यह तभी पता चला सकता है, जब कोई आदमी हिम्मत कर उस बुराई मे लिप्त हो। वे सिफारिश करते हैं कि ऐसा करने वाले शख्स को वही दर्जा दिया जाना चाहिए जो राजा राममोहन राय अथवा स्वामी दयानद सरस्वती को मिला हुआ है।

बहस करने मे मेरे ये मित्र ऐसे बेमिसाल हैं कि मजाल क्या जो किसी से सहमत हो, दब जायें अथवा हार मान लें। इस सदभ मे उनकी राय है कि यदि बहस मे तक चल जाए तो आदमी को स्वर मे चीख का पुट देकर कुछ ऐसे प्रभावशाली शब्दो का इस्तेमाल करना चाहिए, जिन को सभ्रान्त लोग असंसदीय और आम लोग घटिया कहते हैं। ऐसा करने पर सामने वाले के पास चुप हो जाने के अलावा और कोई चारा नही रहता, ऐसा उनका दावा है।

मेरे कुछ कवि मित्र

मित्रों की मित्रता व्यक्ति के लिए वरदान है अथवा अभिशाप ? यह तो मित्रों की किस्म पर निर्भर करता है। बहरहाल, एक शरीफ आदमी की तरह मेरे अनेक मित्र हैं। इनमे से पिचहत्तर प्रतिशत कवि, शायर, कहानीकार सक्षेप मे साहित्यकार हैं—लेकिन इनमे से कोई भी साहित्य के भरोसे नही है मतलब—सभी काम-धधे वाले है, साहित्य सृजन इनका शौक मात्र है, व्यवसाय अथवा विवशता नही। वैसे प्रोफशनल साहित्यकार भी मेरे मित्र हैं, लेकिन व इस चर्चा मे स्थान पान योग्य नही हैं।

यहाँ मैं अपने जिन कवि मित्रो की चर्चा करूगा, उनमे डाक्टर, वकील से लेकर सब्जी विक्रेता तक सभी वग के है। इनकी रचनाओ म इनके व्यवसाय का प्रभाव उजगार होकर किस प्रकार चार चाँद लगा देता है, यही प्रस्तुत लेख का विषय है।

मेरे एक बहुत ही घनिष्ठ मित्र है, जो पशे से डाक्टर हैं और मलेरिया सिंह 'पेनीसीलीन' छद्म नाम से कविताएँ लिखते है। सरकारी अस्पताल का अस्वस्थ वातावरण उनकी रचनाओ मे मुखरित होकर सोन पर सुहागे का काम करता है। इनको हर दूसरा आदमी किसी न किसी बीमारी का रोगी प्रतीत हाता है। ये मित्र जिन्दगी की तुलना एक थर्मामीटर स करते है, जिसमे पारे की तरह उतार चढाव चलता ही रहता है। समाज की तुलना वे एक ऐसे पेशेन्ट से करते है, जिसको अनक आनुवाशिक बीमारियो ने जकड रखा है। इनका कहना है कि इन बीमारियो को हटाने के लिए आपरेशन और जरूरत हो तो पोस्टमाटम तक किया जाना चाहिए।

उनकी लिखी एक कविता प्रस्तुत है, जो उन्होंने अपनी प्रेमिका को सम्बोधित कर लिखी थी। तुम और तुम्हारा प्यार" शीर्षक से वह कविता इस प्रकार है—

तुम्हारा प्यार
जैसे प्रोटीन
तुम्हारी मुलाकातें
जैसे विटामिन
जीवनदायिनी आक्सीजन है
तुम्हारी यह हल्की हल्की मुस्कुराहट
और रूठ जाना तुम्हारा
जैसे जहरीली कार्बनडाइआक्साइड
होश उड़ा देने मे
तुम्हारे सांसो की मादक सुगन्ध
क्लोरोफार्म से कम नही
मार डालेगा मुझे
तेज गुस्सा य तुम्हारा
जो पोटेशियम साइनाइड से कम नही
प्रिये
मुखर रहा करो तुम
आउट डोर की तरह
क्यों रहती हो
खामोशी इतनी
आपरेशन थियेटर की तरह।

अपनी एक कविता मे वे अपनी प्रेमिका से अन्तर्जातीय विवाह का निश्चय लगभग पक्का करते हुए जो कहते हैं—उसका सार इस प्रकार है—समाज की परम्पराओं के फोड़े फुसी हमारे वैवाहिक-मिलन मे रिएक्शन कर रहे है लेकिन मैं भी कोर्ट मैरिज रूपी ऐन्टी बायोटिक्स का इस्तेमाल करूँगा कि हम दोनो ब्लड ग्लुकोज की तरह मिल कर ही रहेंगे।

डाक्टर मित्र के बाद मैं आपको अपने एक ऐसे मित्र से मिलवाना चाहूँगा जो पेशेवर क्रिकेटर है। 'सीजन' के बाद शेष समय मे वे साहित्य-सृजन कर अपना शौक पूरा करते हैं और लगे हाथों साहित्य का भला भी। इनका छदम नाम है विकेट कुमार 'बाउसर'। बाउसर जी की लिखी एक कहानी का एक हिस्सा प्रस्तुत है, जिसमे वे स्वय ही केन्द्रीय-पात्र हैं—

अभी मैंने क्रीज सभाली ही थी कि पिताजी ने एक बाउसर उछाल दिया। पूछा—'कल रात कहाँ थे तुम ?"

"जी यही था।" मैं मनोवैज्ञानिक-दबाब से उबरना चाहता था एक बार।

"क्यो झूठ बोलते हो ग्यारह बजे जब मैंने बुलाया था तब तो थे नही तुम अपने कमरे मे।"

अबकी बार उन्होने वो गुगली फेंकी थी कि जिसको अगर खेलता तो कैच होता और छेडता तो क्लीन-बोल्ड। पर भला हो टेलीफोन का जो अम्पाइर की अँगुली उठने से पहले ही बज उठा और मैं हिट विकेट होते होते रह गया। इस जीवनदान के बाद मैं अगले ओवर क लिए अपने आपको तैयार करने लगा।

कविताओ के मामले म भी बाउसरजी का कोई जवाब नही। उनकी लिखी एक कविता प्रस्तुत है, जो उन्होने अपनी भूतपूर्व प्रेमिका और वतमान पत्नी की चचलता पर लिखी है। शीषक है—' पिचहत्तर ओवर हो जाने के बाद"—

"जब तुम स्पिन होती हो
कितनी सुन्दर लगती हो
वो कटाव
वो घुमाव
वल्लाह!
पर न जानें
किस तरफ से लेकर उछाल
जब तुम

बन जाती हो बम्पर
तो मैं
बीट हो जाता हूँ अक्सर
सुनो
बेवजह तुम
इतना न लहराया करो
उडान कम रखो
यू न इतराया करो
मेरा क्या है
मैं तो रिटायर हो जाऊँगा
चोट लग जाने के बाद
लेकिन
कौन पूछेगा तुम्हे भी
पिचहत्तर ओवर हो जाने के बाद।'

मेरे एक बहुत ही वरिष्ठ मित्र हैं। बाल-बच्चेदार आदमी हैं। एम० ए० पी० एच० डी० है, इसीलिए एक सरकारी दफ्तर मे क्लर्क हैं। दफ्तरी लाल 'डिस्पच' के नाम से कविताएँ लिखते हैं। ये मित्र दफ्तर को ससार, मेज को घर और कलम को नौकरी मानते हैं। अपनी रचनाओ मे वे ट्रेन की घडघडाहट की उपमा सैकडो टाइप राइटरो के एक साथ चलने की ध्वनि से देते है। बुजुर्गों की तुलना वे ऐसी पुरानी फाईल से करते हैं जिसकी आम तौर पर कद्र नही होती, लेकिन रिकार्ड के मामले मे उसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आम आदमी के जीवन की विवशताओ का चित्रण वे कितने प्रभावशाली ढग से करते है, यह दिखाने के लिए मैं उनकी एक कविता प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिसका शीर्षक है—"साथ मेरा तुम्हारा"—

"अगर तुम
इस प्रपोजल की
चाहो मुझसे सैक्शन
तो मुझे नही

इस पर
कोई भी ऑब्जेक्शन
कि
मेरा-तुम्हारा साथ है
लेटर इनक्लोजर की तरह
लेकिन इसका यह मतलब नही
कि मेरे सर पर चढ जाओ तुम
फाइल पर पेपर वेट की तरह
किसी दिन तुम्हारी
कोई फरमाईश न हो अगर
तो लगता है जैस
कोई पेंडिग वक नही टेबल पर
तुम्हे प्रसन्न पाता हूँ
जब कभी
तो लगता है जैसे
मेरा प्रमोशन हो गया है
अभी अभी।
तुम्हारे एहसाना का बोझ
मैं महसूस तो कर सकता हूँ
पर उठा नही सकता
जैसे कि
बनिये का वह उधार खाता
जिसका
हिसाव तो कर सकता हूँ मैं
पर चुका नही सकता।"

डिस्पच जी की ही एक और कविता मुझे याद आ रही है। जिसका सार इस प्रकार है—"प्राणप्रिये, तुमसे मुलाकात न करना वसा ही है जैसे दफ्तर आकर भी रजिस्टर मे हस्ताक्षर न करना। पर लगता है मेरा-तुम्हारा साथ सम्भव नही, हो भी कैसे ? कहाँ डी० ओ० लेटर और

कहा इण्ड्रोस्मेट, कहाँ रिवाल्विग-चेयर और कहा स्टूल तुम मुझसे बिछुड जाओगी, यह सोचकर ऐसा लगता है जसे कोई मेरे शरीर मे सकडा आलपिनें एक साथ चुभा रहा हो।"

दफ्तरी लाल डिस्पेच' के बाद मैं आपको मिलवाना चाहूँगा श्रीयुत पैरवी कुमार 'अदालती' से। असली नाम तो उनका कुछ और है, वे लिखते इसी नाम से हैं। यह ता आप समझ ही गए होगे कि पेशे से ये वकील हैं। इनकी कविता सुनकर पढकर स्वत ही सिद्ध हो जाता है ये किसी वकील की लिखी हुई है। कुछ दिना पहले हमारे कस्बे मे एक छोटा सा कवि सम्मेलन आयोजित हुआ था। इसमे सर्वाधिक वाहवाही अदालती जी को ही मिली अपनी कविताओ के लिए।

पहले उन्होने एक छोटी-सी कविता "सत्य और असत्य" शीर्षक स इस प्रकार सुनाई—

"क्या है सत्य
और क्या असत्य।
कोई नही जानता।
सत्य
सत्य भी हो सकता है
और असत्य भी
असत्य
असत्य भी हो सकता है
और सत्य भी।"

यह कविता तो भूमिका मात्र थी। इसके बाद उन्होने जो एक आह्वान गीत सुनाया, उसका सुनकर श्राता गद्‌गद हो गय। वह गीत इस प्रकार था—

"आओ हम सब
चश्मदीद गवाह बन जाएँ
हर सबूत हर ब्यान से
जग अपनी ठन जाए
आओ

ऐसे चश्मदीद गवाहों की
सख्त जरूरत है आज देश को
जो दमदार बना दें
हर कमजोर केस को।
दीवानी हो या फौजदारी
हर मामले मे काम आएँ
आओ

कटघरे म खडे होकर
सिफ झूठ बोलन की
सच्ची कसम खाएँ
और झूठ के सिवा
कुछ भी न बोलने का निश्चय कर
एक नया इतिहास बनाएँ
आओ

रोजनामचा हो पुलिस का
या इकबालिया बयान मुजरिम का
चैक अप या पोस्टमाटम रिपाट हो
किसी एक्सपट या स्पेशलिस्ट की
कोई भी हम पीछे न हटाने पाये
आओ "

कवि सम्मेलनो मे ये अध्यक्ष को अनेक बार मीलाड और युअर ऑनर कह चुके हैं। दूसर कवि के काव्य पाठ के दौरान 'ऑब्जेक्शन' कह कर चिल्ला पडना इनकी आम प्रवृत्ति है।

कविता किसी की बपौती नही। कविता तो अनुभूति का विषय है। मेरे एक मित्र है, जो बाजार मे सब्जी की दुकान करते हैं और कद्दूमल 'करेला' के नाम से कविताएँ लिखते है। एक दिन उन्होंने मुझे एक ऐसी कविता सुनाई, जो मेरे हिसाब से शृगार-काव्य मे मील के

पत्थर की हैसियत रखती है। कविता मे जिन उपमाओ और उपमानो का प्रयोग हुआ है वे नितान्त अछूते हैं। गौर फरमाइए—

'बैंगन सी चिकनाई है
चेहरे पर
रग है टमाटर जैसा
मिर्च जैसी नाक मे
मूगा लगता है
छिले हुए मटर जैसा।
पके जामुन-सी काली
काचरी जैसी
गोल आँखें
रसीले अधराधर
ज्यू ऊपर नीचे रखी हो
आँवले की फाकें
गोभी के फूल-सा
खिला हुआ
सुन्दर मुखडा
क्षीण कटि की लचक
हिलता हो ज्यो
ठेले पर कद्दू का टुकडा
खरबूजे से सर पर
भूरी जुल्फें
जैसे मक्ई क भुट्टे के रेशे
आपस मे उलझे पडे हो
सफेद चमकते दाँत
मुख मे मानो
कच्चे खरबूजे के बीज जडे हो
लौकी से पतले पाँव
कच्ची-ककडी-से

नरम नरम हाथ
कोमल अँगुलियाँ हाथो मे
पालक के पत्ते पर
ज्यो भिण्डियो की पाँत।"

मेरे ये मित्र आदर्शवादी है। इनका कहना है कि आदमी को करेल
की तरह कसैला नही बल्कि आम की तरह मीठा होना चाहिए। टमाट
अथवा सन्तरे की तरह थोडा खटमीठा भी चल सकता है। कई बा
बैठे बैठे इनको लगता है जैसे इनकी दुकान ने प्रेमिका का रूप धारण क
लिया है। तब दुकान मे रखी विभिन्न सब्जियाँ इनको प्रेमिका के
विभिन्न अगो के रूप मे दष्टिगोचर होती हैं। प्रेमिका मे सब्जियाँ औ
सब्जियो मे प्रेमिका ढूढने के विषय पर ये काफी चिन्तन कर चुके है।

मित्र वैसे और भी है मेरे, किन्तु इनकी चर्चा फिर कभी करूँगा
आज यहाँ बस इतना ही।

शास्त्रीय-गायन मे सकेतो का महत्व

साधारणत स्पष्ट गायन को अस्पष्ट बनाने की कला को शास्त्रीय-गायन कहा जाता है। इसमे शब्द कम से कम और आलाप अधिक से अधिक होता है। इसलिए इसमे असली महत्व गले का होता है जीभ का नही। शास्त्रीय गीत को गाना जितना आसान है उसको सुनना उतना ही मुश्किल है। ऐसे गायन को बर्दाश्त करना हर किसी के बूते की बात नही। सवा हाथ का कलेजा चाहिए सुनन वाले मे। समझन की बात हम फिलहाल नही करत।

इसका मिजाज कुछ इस किस्म का होता है कि जब तक अपनी आँखो से देख न लिया जाए तब तक यह विश्वास करना कठिन होता है कि कानो के पर्दों पर जो स्वर दस्तक दे रहे हैं, वे किसी वाद्य-यन्त्र स निकल रहे है अथवा किसी प्राणी के गले से ? और वह प्राणी भी इसी लोक का है या किसी अन्य ग्रह का ?

यद्यपि आजकल शास्त्रीय गायन के दशक बहुत कम रह गए हैं। लेकिन फिर भी अभाव वाली स्थिति नही आई है। आप कहेगे—यहाँ मुझे 'दशक' की जगह 'श्रोता शब्द का प्रयोग करना चाहिए था। मुझे कोई ऐतराज नही। आगे स 'श्रोता' शब्द का प्रयोग कर लूगा। लेकिन यह भी सत्य है कि शास्त्रीय गायन का सम्बन्ध सुनने से अधिक देखने स हाता है। अधिकाश लोग यह सुनने नही जाते कि गायक क्या गा रहा है, बल्कि यह देखन जाते हैं कि किस तरह गा रहा है।

शास्त्रीय गायन की अपनी कुछ विशेषताए है, जो इसको सामान्य-गायन के मुकाबले विशिष्ट रूप प्रदान करती है।

लगभग सभी शास्त्रीय-गायक आँख मूद कर गाते हैं। इसके अनेक कारण है। ऐसा करने मे सबसे बडी सुविधा तो यह रहती है कि गायक पर दशकों—माफ कीजिए, श्रोताओ की सुसस्कृत कायवाहिया का कोई असर नही होता। श्रोता गायक के प्रति जो उपेक्षा के भाव प्रदर्शित करते हैं, उनके दुष्प्रभाव से वह अपने आपको बचा लेता है। कई बार ऐसे समारोहो मे कुछ पहलवान किस्म के लोग भी आ जाते हैं। वे सबसे आगे वाली पक्ति मे बैठकर गायक का इस अन्दाज से घूरने लगते हैं जस अखाडे मे अपने प्रतिद्वन्द्वी को सतोल रहे हो। ऐसे मे गायक सब गाना-बजाना भूल जाता है। ऐसी स्थिति से बचने का एक ही उपाय है कि मजे से आँख बन्द कर गाते जाओ। फिर कोई चाहे घूरे लाल आखो से या कोई निहार हसरत भर निगाहा से। सब ठेंगें पर।

शास्त्रीय-गायन मे सकेतो का अपना एक विशिष्ट महत्व है। गले स जो नही कहा जा सकता वह हाथ स कह दिया जाता है। अर्थात् गायन से जो बात स्पष्ट नही होती वह सकेत स स्पष्ट हो जाती है। यहाँ हम कुछ सकेतो की चर्चा करेंगे—

अनेक बार गायक अपने हाथो को इस तरह हिलाता है जैसे श्रोताओ स कह रहा हो—आओ, मच के नजदीक आ जाआ। कई बार वह हाथा को इतने जोर से झटकता है जैसे कह रहा हो—बचो—भागो—उठो—भाग जाओ—चले जाओ—दफा हो जाओ। कभी-कभी वह इस तरह का सकेत करता है जैसे कह रहा हा कि जाओ, ऊपर चले जाओ।

बीच-बीच मे वह ऊपर ऐस देखता है जैसे आसमान के गिरने का समय हो गया हो। यदा कदा वह हाथ के अँगूठे और एक अँगुली को मिलाकर श्राताआ को ऐसे दिखाता है मानो पूछ रहा हो—बताओ इसम क्या है? कभी कभार वह बन्द मुट्ठी को इस प्रकार खोलता है जसे नूरजहाँ ने कबूतर उडा दिया हो। कई बार वह ऐसे भी करता है कि ऊपर स हाथ को तीव्र गति से नीचे जमीन पर (दरी या गद्दा भी हो सकता है) लाता है और फिर एक कोने मे ऊपर उठा ले जाता है। जसे बता रहा हो अभी अभी उधर से एक एफ० सोलह विमान आया, यहाँ उतरा और फिर उडकर उधर चला गया।

किसी किसी अवसर पर वह गदन को इस प्रकार हिलाता है मानो जिसकी प्रतीक्षा थी वह आकर श्रोताओं मे बैठ गया हो। ऐसा भी देखने म आया है कि वह एक झटके के साथ उचडू होकर बैठ जाता है जैसे दरी पर किसी बिच्छू का आक्रमण की मुद्रा म देख लिया हो।

अधिकाश लोग शास्त्रीय गायक को मूखता की हद तक भोला समझते है, जबकि वास्तव मे बहुत चालाक होता है, इसको सिद्ध करने के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। गायन के बीच-बीच म जब स्वर अचानक सप्तम से पचम पर पहुँच कर कान के पर्दे के लिए सकट उपस्थित कर देता है। तब गायक बडी सफाई से अपना एक हाथ स्वय के कान पर लगा लेता है और दूसरा दशकों (श्रोताओं) के सामने कर देता है। उनको इस भुलावे म रखने के लिए कि देखो मेरा हाथ यह रहा तुम्हारे सामने। कान का पर्दा फटने की आशका होती तो मैं भला इसको अपने कान पर नही रख लेता ?

सुगम गायन मे कई बार ऐसा होता है कि कोई नौसीखिया गायक गाते समय आगे का अन्तरा भूल जाता है और एक ही पक्ति को बार बार दोहराये जाता है। तब श्रोताओ की भाव-वृत्ति (मूड) बिगड जाती है और वे उसको 'हूट' कर देते हैं। ऐसे मामलो मे यह देखा गया है कि गायक उखाड जाता है। अपने आपको अपमानित महसूस करता है सो अलग।

शास्त्रीय-गायन मे इस किस्म का कोई खतरा नही होता। पहली बात तो उसमे कोई अन्तरा होता ही नही। हो तो भी अगले और पिछले मे कोई अन्तर नही होता। अन्तर हो तब भी गायक और श्रोताओ मे से किसी को उसकी जानकारी नही होती। इसमे तो यदि गायक राग का सारा भी भूल जाए तो कोई फक नही पडता। बस आख मूद लीजिए और आलाप भरते रहिए मजे से।

शास्त्रीय गायन जितना अस्पष्ट हो उतना ही उच्च स्तर का माना जाता है। इसमे तबले और सारगी वाले के बीच एक प्रकार का अघोषित

युद्ध चलता है, जो कि कौतुक का विषय होता है। ऐसा लगता है जैसे सारगी का मालिक तबले वाला और तबले का मालिक सारगी वाला हो। अन्यथा तो कोई भी समझदार आदमी अपने साज को इतनी बेदर्दी से नही बजा सकता। श्रोता समझते हैं जैसे दोनो मे यह होड लगी हुई हो कि देखें मैं पहले तेरी सारगी को तोड पाता हूँ या तू मेरे तबले को।

स्वेटर के फंदे

रविवार की सुबह थी। देर से सोकर उठने के बाद हम अखबार से उलझ रहे थे। अभी एक दो समाचारों के शीर्षक ही पढ़ पाए थे कि अचानक श्रीमती जी प्रकट हुइ। हमने सोचा था, उनके नरम हाथों मे गरम चाय का प्याला होगा। मगरउसकी जगह उनके हाथों मे ऊन की लच्छियाँ देखकर हमारी आशा पर तुषारापात हो गया। सो हमने इस तरह अखबार से दृष्टि चिपका दी, जैसे उनको देखा ही न हो।

श्रीमती जी ने फौजी अदाज मे समाचार पत्र हमारे हाथों से छीन कर एक ओर पटक दिया और दिवान पर हमारे सामने पालथी मार कर बैठ गई। उनको इस तरह पालथी मार कर बैठे हमने सिफ पाणिग्रहण सस्कार के समय ही देखा था। आज फिर उसी मुद्रा मे उन्हे बठे देख कर हमने दृष्टि को प्रश्नवाचक बनाकर उनके चेहरे पर गडा दिया तो वह बडे प्यार से बोली, "जरा इसके गोले बनवा दीजिए।'

जी मैं तो आया कि साफ इनकार कर दूँ और कह दूँ कि इस काम के लिए मुझे फुरसत नहीं है। लेकिन चूकि यह श्रीमती जी का उस दिन का पहला-पहला अनुरोध था। इनकार करते न बना। हमारी मौन स्वीकृति पाकर उन्होंने ऊन की लच्छियाँ अपने दोनों घुटनो मे लपेट ली और एक सिरा हमे थमा दिया। बस फिर क्या था, वह लच्छियाँ खोलती गईं और हम गोले बनाते गये। बीच में हमने कहा भी कि अब आप गोले बनाइए और हम लच्छियाँ खोलते हैं। पर उन्होंने अपनी मुस्कराहट के सोटो का इस्तेमाल करके इसे एकदम अस्वीकार कर दिया।

ठीक पौने दो घटे लगाकर श्रीमती जी ने सारे ऊन के गोले बनाकर

कहीं हमारा पीछा छोडा। हमारे हाथ दद करने लगे थे। उसी दर्द का हवाला देते हुए हमने उनसे चाय का विनम्र अनुरोध किया, जिसको उन्होने बिना किसी सशोधन के स्वीकार कर लिया।

चाय पीने के बाद हमने फिर अखबार उठाया किन्तु वही हुआ, जिसका कि हमे खटका था। हमे लगा, जैसे हमारे और अखबार के बीच आज सैकडो किलोमीटर का फासला पैदा हो गया है। वजह यह थी कि श्रीमती जी फिर आ धमकी। किन्तु यह देखकर कुछ सतोष हुआ कि अब की बार उनके करकमलो मे ऊन की लच्छियो के स्थान पर दो सलाइयाँ थी। एक सलाई मे कुछ फदे डले हुए थे। हमने अब की बार उनको कुछ भी करने का मौका न देते हुए स्वय पूछ लिया।

"अब क्या है ?"

"जरा ये फदे गिन दो, 110 हैं या नही," कहते हुए श्रीमती जी ने सलाई हमारी ओर बढा दी। यह 'जरा' औरतो का विशेष शब्द होता है।

"यह तो तुम भी कर सकती हो ?"

"कर तो सकती हूँ, पर मेरे गिनने मे कम ज्यादा हो सकते हैं, इसलिए।" उन्होने सफाई पेश की।

उनसे जिरह करने का कोई फायदा नही था सो हमने चुपचाप सलाई थाम ली और फदे गिनने लगे। लेकिन एक दूसरे से सटे बारीक ऊन के फदो को गिनना, हमे आसमान के तारो को गिनने जैसा लगा। लिहाजा हमने बिना गिने ही कह दिया—"पूरे 110 हैं।" (यह तो बाद की घटनाओ से पता चला कि वे पूरे 125 थे) पर हमने अपनी जान बचाने के लिए उन्हें 'सही' का प्रमाणपत्र द दिया, जिसका उन्होने तत्काल लाभ उठाया और जाते-जाते कहती गई—"गिनती मुझे भी आती है। देख लो, एक भी कम ज्यादा नही निकला।"

दूसरे दिन शाम को लगभग छ बजे हम दफ्तर से घर आए तो श्रीमती जी को स्वेटर से उलझा पाया। हमारे बैठते ही उन्होने स्वेटर का निर्मित हिस्सा बडी शान के साथ हमारे सम्मुख अवलोकनाथ पेश

किया। साथ ही अपनी उस महान उपलब्धि का बडे जोरशोर से बखान करने लगी। तभी हम बीच मे ही कह बैठ, "चाय मिलेगी ?"

हमारी यह ऊटपटी बात सुनकर पहले तो उन्होने हमारी तरफ इस तरह देखा, जैसे हमने कोई बहुत ही अजीब बात कह दी हो। फिर उन्होने इस तरह मुह बिगाड लिया, मानो सितार के स्वरो के मध्य उन्होंने ढोल की धमक सुन ली हो। वह कुछ हतोत्साहित सी होकर रसोई की ओर चली गइ। जाते हुए लगभग रोती हुई सी बोली, "भिजवाती हूँ।"

"क्या ? किसके हाथ ?"

"मतलब लाती हूँ।"

काफी देर तक जब श्रीमती जी चाय लेकर नही आईं तो हम स्वय रसोई की ओर बढ गए। वहाँ का जो नजारा हमने देखा तो बस दखते ही रह गए। श्रीमती जी उगलियो से स्वेटर नाप रही थी और चाय उफन कर स्टोव को अर्पित होती हुई फर्श पर गिरती जा रही थी। यहा वहाँ सब जगह चाय ही बिखरी हुई थी।

"पहले एक काम तो इतमीनान से कर लिया करो", हम ने कहा।

"आपसे तो इतना भी नही होता कि जरा खुद आकर सभाल लें। मैं कौन बैठी मक्खियाँ मार रही हूँ। स्वेटर बुन रही हूँ वह भी जनाब के लिए "

"अच्छा तुमने पहले क्यो नहीं बताया कि यह निर्माण कार्य हमारे लिए हो रहा है," जानबूझकर अनजान बनते हुए हमने कहा—'तुम अपना काय चालू रखो। चाय से दो दो हाथ म करता हूँ। तुम चीनी कितनी लोगी ?"

"राशन वाली डेढ चम्मच और बाजारी वाली आधी चम्मच", उन्होने कहा। उनका "मूड" बदलने के साथ ही स्वेटर वाली बात आई गइ हो गई।

तब हम भोजन की प्रतीक्षा मे पलकें बिछाए बैठे थे, जब श्रीमती जी ने हमसे आकर पूछा—

"आज खिचडी से काम चल जाएगा ?"

"क्यो, तबियत ठीक नही है क्या ?"

"अजी बीमार हो मेरे दुश्मन। लेकिन कभी कभी हलका भोजन भी तो करना चाहिए, तन्दुरुस्ती के लिए ठीक रहता है", उन्होंने किसी वरिष्ठ चिकित्सा अधिकारी की तरह हमें बताया।

"बिलकुल करना चाहिए, लेकिन यह तो कतई जरूरी नहीं कि वह हलका भोजन आज ही किया जाए ?" हमने प्रतिवाद प्रस्तुत किया।

"आप समझते क्यों नहीं। खाना बनाने में पूरे दो घंटे लगेंगे। खिचडी अभी 10 मिनट में बन जाएगी, और यह स्वेटर "

उन्होंने जब असली मकसद प्रकट किया तो हमें लगा कि ज्यादा ना-नुकर की तो खिचडी भी हाथ से जा सकती है। मरता क्या न करता, हार कर हमने खिचडी के लिए स्वीकृति दे दी। या यों कह लीजिए कि श्रीमती जी ने हमसे जबरदस्ती स्वीकृति ले ली।

उस दिन और फिर जब तक स्वेटर का निर्माण कार्य जारी रहा, हम कई बार अपने स्वास्थ्य के लिए 'हलका भोजन' करना पडा। श्रीमती जी के स्वास्थ्य के लिए एकाध बार तो 'व्रत' भी करना पड गया।

खैर, उस रात हम नींद लाने की कोशिश कर रहे थे। श्रीमती जी सोफे पर गंभीर मुद्रा में बैठी कुछ सोच रही थीं। बीच बीच में उलट-पुलट कर स्वेटर को देखने का क्रम भी जारी था। उनके हावभाव से लगता था, जैसे यह कोई अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णय लेने जा रही हों।

"अब छोडो इसे, सुबह बुन लेना सो जाओ", हमने उनको एक बहुत ही नेक सलाह दी। पर इसको सुनकर उन्होंने जो फरमाया, उसे सुनकर तो हमारे हाथों के तोते ही उड गए। वह बडी मायूसी से बोलीं, 'बुनना नहीं, उधेडना है।"

"क्या ?' हम हडबडा कर उठ बैठे। विश्वास करने के लिए एक बार फिर पूछा, 'उधेडना है ?"

"हाँ' श्रीमती जी का स्वर अत्यन्त गंभीर था।

"लेकिन क्यों ?" हमने पूछा।

"मुझे यह डिजाइन आगे बनाना नहीं आता दीदी बता कर गई थीं। पर अब समझ नहीं आ रहा कि आगे कैसे बुनूँ।" उन्होंने रुआँसे स्वर में कहा।

'तो ?"

"तो क्या, उधेड़ना है इसे। सुबह आशा से नया डिजाइन साथ कर आऊँगी, तब बुनूँगी" उन्होंने विकल्प प्रस्तुत किया।

"तो फिर उधेड़ती रहो तुम इसे।" एक नि श्वास के साथ कहते हुए हमने करवट लेकर बलपूवक आँखें बद कर ली।

पर तभी श्रीमती जी बोल उठी, "मुझ अकेली से ऊन उलझ जाएगी आप इसके फिर गोले बनवा दीजिए।"

"मुझे तो नीद आ रही है", मैंने बनावटी जम्हाई लेते हुए कहा। हमारा इतना कहना था कि श्रीमती जी का पारा चढ़ गया। उन्होंने हमे एक ही झटके मे सीधा करते हुए आदेशनुमा अनुरोध किया—

"हद हो गई दो मिनट ही तो लगेंगे, हम कौन-सा अपना स्वेटर बना रहे है आपका ही तो है। आप हैं कि हमारा इतना सा भी काम नही कर सकत।"

कहने की आवश्यकता नही कि पूरे एक घटे के कठिन परिश्रम के बाद हमे निद्रा देवी की शरण म जान की अनुमति प्राप्त हुई। उस रात हमे यह भी पता चला कि हलके भोजन के बाद नींद भी हलकी ही आती है।

दूसरे दिन सुबह सुबह ही श्रीमती जी स्वेटर की सामग्री व उपकरण उठाकर कही जान लगी तो हमने पूछा—

"कहाँ जा रही हो ?

'आशा के यहाँ।"

सुनकर हम कुछ सतोष हुआ कि वह ज्यादा दूर नही जा रही। मगर फिर भी अपने को रोकते-रोकते हमारे मुह स निकल ही गया, "क्यो ?"

"जानते हो फिर भी पूछ रहे हो कल ही तो बताया था कि आशा स नया डिजाइन सीख कर आऊँगी।" श्रीमती जी ने कहा।

"लेकिन डिजाइन दिन मे भी सीखा जा सकता है। दिन मे कौन दफ्तर का काम करना है ?"

'दफ्तर का काम भी कोई काम है क्या। घर का काम करके देखो

तो एक दिन में चौकड़ी भूल जाओगे।" उनके बदले हुए तेवर देखकर हम सहम गए।

वह फिर बोली, "आप शायद यह भी भूल गए कि आशा दस बजे कालिज चली जाती है।"

"ठीक है", हमने आत्मसमर्पण करते हुए कहा, "लेकिन मेहरबानी करके आ जरा जल्दी जाना। मैं इस वक्त हलके भोजन के मूड मे नही हूं।"

"अभी एक मिनट मे आई", उन्होने चुटकी बजाते हुए कहा और अंतर्धान हो गई।

समय काटने के लिए हम एक दोस्त की कुटिया पवित्र करने चले गए। साढे नौ बजे वहां से लौटे। तब हमारा कार्यक्रम था, गरमागरम भोजन कर दफ्तर जाना। लेकिन घर आकर पता चला कि श्रीमती जी तो अभी तक लौटी ही नही।

ठीक 10 बजे वह आइं। हमको तो कुछ कहने का मौका ही नही मिला। वह स्वयं ही आकर शोर मचाने लगी कि "देर हो गई, खाना बनाना है।"

खाना खाकर किसी तरह 11-30 बजे हम कार्यालय पहुंचे। वहां जाते ही बॉस के चपरासी ने बताया कि साहब हमे सुबह से तीन बार बुला चुके हैं।

ये बॉस लोग भी अजीब होते हैं समय से पहुंच जाओ तो शाम तक एक बार भी याद नही करते और कभी देर हो जाए तो पहुंचने से पहले ही तीन बार बुला चुके होते हैं। साहब को क्या पता कि आजकल हम स्वेटर के फंदो मे फंसे हुए हैं।

कई बार बुनने, उधेडने और फिर बुने जाने के बाद आखिर महीना भर मे वह स्वेटर बनकर तैयार हो ही गया। तब एक शाम बडी धूमधाम के साथ श्रीमती जी ने हमे वह स्वेटर पहनाया। जैसी कि आशंका थी, स्वेटर काफी लम्बा व ढीला हो गया था।

"कैसा रहा?" उन्होने जानना चाहा।

"यह स्वेटर है ?" हमने उसका नीचे का हिस्सा और नीचे खींच कर घुटनों को ढाँपने का प्रयास करते हुए कहा।

'और नहीं तो क्या है ?" वह तपाक से बोली।

"देवी जी, अगर यह स्वेटर है तो फिर कुरता कैसा होता है ?"

"जरा बड़ा बन गया है। आज थोड़ा सा उधेड़ दूंगी", श्रीमती जी ने जैसे विस्फोट किया।

"अरे नहीं नहीं, ऐसा गजब मत करना', मैंने चौंक कर कहा। उनकी बात सुनकर वे सारे नजारे हमारी आँखों के आगे घूम गए। वह गोले बनाना, लच्छियाँ सुलझाना, हलका भोजन, फर्श पर फैली चाय, देर से दफ्तर पहुँचना वगैरा-वगैरा।

'ढीला स्वेटर तो आजकल का फैशन है, फैशन। चलो, अब चाय पिला दो, नया स्वेटर पहनने की खुशी में।"

"स्वेटर पहना आपने और चाय पिलाऊँ मैं क्यों ?" उन्होंने पूछा।

'बात समझा करो। तुमने पिलाई या मैंने पिलाई बात तो एक ही है, क्या फर्क पड़ता है', कहते हुए हम श्रीमती जी को लगभग धकेलते हुए रसोई में ले गए।

[सरिता (प्रथम) जनवरी, 1981]

परिभाषावली

समय के साथ-साथ प्रत्येक चीज बदलती है, भाषा भी और परिभाषा भी। कई बार यह महसूस किया जाता है कि अमुक परिभाषा अब लागू नही होती अथवा अमुक परिभाषा का बदल दिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए किसी जमाने मे जो परिभाषा 'बेईमानी' की होती थी, वही आज 'बुद्धिमानी' की है। यहाँ प्रस्तुत हैं कुछ परिभाषाए, जो परम्परागत न होते हुए भी सामयिक हैं।

प्यार

यह उपन्यासो एव चलचित्रो के अतिरिक्त कभी-कभार वास्तविक जीवन मे भी पाया जाता है। वहा यह अपने आप हो जाता है, जबकि यहाँ जानबूझकर मौका देखकर किया जाता है। प्यार का मतलब प्रेमी। प्रेमिका की उम्र समझ, उद्देश्य एव क्षमता के अनुसार मूक रहने से लेकर बलात्कार एव आत्महत्या तक कुछ भी हो सकता है। प्रेम की स्थिति मे प्रेमी के मस्तिष्क का सबध शेष अगो से शिथिल और कुछ मामलो मे पूर्णत समाप्त हो जाता है, इसीलिए प्रेमियो को पागल और प्रेम को अधा कहा गया है। विद्वानो के अनुसार प्रेम मे वह सब कुछ जायज है जो युद्ध मे होता है। प्यार की सबसे बडी सफलता उसकी असफलता होती है।

प्रेमिका

प्रेमिका उस प्रतिभाशाली नवयुवती को कहा जाता है, जो मूर्खा न होते हुए भी मूर्खा होने का अभिनय सरलतापूर्वक कर लेती हो और चार हम उम्र नवयुवको मे से प्रत्येक को यह विश्वास दिला सकती हो कि वह

सिर्फ उसी की है। शैक्षणिक दृष्टि से अक्षर ज्ञान पर्याप्त है। अधिक अध्ययन प्रेम-तरंगों के लिए कुचालक ही सिद्ध होता है सुचालक नहीं। प्रेमिका की अभिलाषा प्रत्येक को और आवश्यकता कुछेक को होती है। कलाकार नामक प्राणी का काय प्रेमिका के बिना एक पल भी नही चल सकता। सर्वाधिक आदर्श प्रेरणा प्रेमिका ही मानी जाती रही है।

औषधि

औषधि उस ठोस अथवा तरल पदार्थ को कहते हैं जो मुह अथवा सुई द्वारा शरीर प्रविष्ट म करवाया जाता है। इसका मुख्य काय है— दर्द का स्थानांतरण। उदाहरण के लिए किसी के सिर में दर्द है। इसके लिए जो औषधि होगी वह दर्द को सिर से हटा देगी। अब वह दर्द सीने मे आता है अथवा टाँग म, यह व्यक्ति के अंगों की प्रतिरोधक क्षमता पर निर्भर करता है। सभव है भविष्य में ऐसी औषधि का निर्माण सभव हो जाए, जो दर्द को जड से ही खत्म कर डाले। औषधि मुख्यत असली और नकली दो प्रकार की होती है। असली औषधि की चार गोलियाँ जो काम' करती है वह नकली औषधि की एक ही गोली कर डालती है सरकारी कर्मचारियों को होने वाली बीमारियों मे अधिक मूल्य वाली और अन्य व्यक्तियों क लिए कम मूल्य वाली औषधि प्रभावी होती है।

जहर

जहर, विष, हलाहल अथवा गरल, सांपो मे बनावटी और मनुष्य मे असली रूप मे पाया जाता है। इसलिए जब कभी सांप और मनुष्य का आमना-सामना होता है तो भागने का प्रथम प्रयास अमूमन साँप की ओर से ही होता है। एक समय था जब विषधारी होने के कारण साँपो की खासी अहमियत थी लकिन बीच मे स्त्री नामक जीव न विष कन्याओं का रूप धरकर वो वावेला मचाया कि साँपो का सारा रुतबा जाता रहा। एक कवि क अनुसार साँप को यह जहर वहाँ से मिला है जहाँ से कि आदमी को शहर। आधुनिक समय मे शायद ही कोई वस्तु हो जिसे

जहरीली न कहा जा सकता हो। विष की विभिन्न किस्मों में 'धीमी' और 'मीठी' किस्म सर्वाधिक खतरनाक मानी जाती है।

दिमाग

प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार यह कुछ प्राणियों में खोपड़ी के अंदरूनी हिस्से में पाया जाता है। अध्यापकों का दिमाग चाटने प्रशासनिक अधिकारियों का खपाने और बाकी का खाने के काम आता है। लगभग सभी व्यक्ति इसकी अस्वस्थता के प्रति हर दम सशंकित रहते हैं और अमूमन एक दूसरे से पूछते रहते हैं कि उसका दिमाग दुरुस्त है अथवा नहीं। दिमाग की उपस्थिति तो अधिकांश में होती है, लेकिन इसका इस्तैमाल कम ही लोग करते हैं। जिसका दिमाग जितना ज्यादा चलता है उसके पागल हो जाने की संभावना उतनी ही अधिक होती है। दिमाग को स्थायी रूप से आराम दे देने वाला व्यक्ति दुनियादारी से काफी ऊपर उठ जाता है और अधिकांश झंझटों से मुक्त हो जाता है। एक रिपोर्ट के मुताबिक आज तक सबसे बड़ा (भारी, वजन में) दिमाग जिस व्यक्ति में पाया गया, वह पागल था।

साहित्य और साहित्यकार

जो व्यक्ति साहित्य का सृजन करे वह साहित्यकार हो, यह तो आवश्यक नहीं, लेकिन साहित्यकार जो सृजन करता है, वह हर हालत में साहित्य होता है। इस क्रम में कहानी, कविता, नाटक, उपन्यास, निबंध, व्यंग्य वह होता है जो क्रमश: कहानीकार, कवि, नाटककार, उपन्यासकार निबंधकार और व्यंग्यकार लिखता है। जो कुछ नहीं लिख सकता और लिखने की इच्छा का शमन भी नहीं कर सकता वह आलोचक बन जाता है और आलोचना लिखता है।

पुरस्कार

पुरस्कार सामान्यत: कलाकारों को प्रदान किए जाते हैं। कुछ पुरस्कारों में फालतू सामान के अलावा कुछ धनराशि भी होती है। धन वाले पुरस्कार आम तौर पर इसलिए दिए जाते हैं कि कलाकार कला

का पीछा छोड दे और भरपेट भोजन करना प्रारम्भ कर दें, ताकि वे सभी स्वस्थ रहे और कला भी ।

प्राध्यापक

अत्यधिक वाद विवाद टीका टिप्पणी करने की व्याधि से स्थायी रूप से ग्रसित वह पालतू और फालतू जीव प्राध्यापक कहलाता है जो अनाज से अधिक औषधि का सेवन कर इस तथ्य को सिद्ध करता है कि वह जीने के लिए खाता है, खाने के लिए नही जीता । अपने को छोडकर शेष सारे देश का भविष्य इनके हाथ मे होता है, ऐसा कहा जाता है ।

नशाबदी

नशाबदी नसबदी का पर्यायवाची नही है । नशाबदी उस स्थिति को कहते हैं जिसमे शराब बनाने का अधिकार सरकार अथवा कुछ कम्पनियो के हाथो से निकल कर आम आदमी के हाथ मे आ जाए। इन स्थिति मे नागरिको की सरकार अथवा कम्पनियो पर आत्मनिर्भरता समाप्त हो जाती है और वे अपने पांवो पर खडे हो जाते हैं ।

पुलिस चौकी

नगर का वह सर्वाधिक खतरनाक स्थल जहाँ ठर्रापान एव डडा चालन नियमित रूप से चलता रहता है । यहाँ पाए जाने वाले महानुभावो के समक्ष गुडे और अपराधी शम से सर झुकाकर स्वीकार करते है कि हम तो आपके सामने कुछ नही । पुलिस चौकी म होने वाले मुख्य काय हैं—सभ्य नागरिको को अपमान का भय दिखाकर चौथ वसूली निरपराध व्यक्ति को पकड कर लाना और अपराधी बनाकर छोड देना, रिपोट लिखवाने आई महिला से थोडा-सा बलात्कार कर उससे आत्मीयता स्थापित करना ठर्रापानोपरात यातना की नवीन विधियो की खोज कर उनको आजमाना खाली जब रिपोट लिखवाने आये व्यक्ति को उस वक्त तक अदर कर देना, जब तक कि उसको छुडवान कोई भरी जेब वाला न पहुँच जाए इत्यादि इन सबके बाद भी यदि समय बचे तो उत्कृष्ट किस्म की गालियो का आदान प्रदान कर मनोरजन किया जाता है ।

गधा

पचतत्र की अनेक कहानियो का एक महत्वपूण चरित्र और ससार का सर्वाधिक धैयवान प्राणी, जा हमेशा 'ओवर-टाइम' मे व्यस्त रहता है। घर और घाट के मध्य पाए जाने वाले गधे अधिक चर्चित रहे हैं। सुधिजनो का ख्याल है कि गधो मे उतने 'गधे' शायद न हो जितने कि मनुष्य नामक प्राणियो मे हैं। इस प्राणी को सर्वाधिक मानसिक कष्ट उस समय होता है, जब एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य द्वारा गधा कहा जाता है। इस मासूम की सद्चरित्रता इस समय सकट मे पड जाती है जब किसी मानव-पुत्र को 'गधे का बच्चा' घोषित कर दिया जाता है। मनुष्य इस अबोध का शारीरिक शोषण ही नही करता बल्कि इसको मानसिक कष्ट भी पहुचाता है।

- -

परिचय

नाम एस० एल० मीणा

जन्म 18 मार्च, 1958

शिक्षा स्नातकोत्तर (इतिहास)

सम्प्रति 1980 से 1987 तक महाविद्यालयो मे अध्यापन

केन्द्रीय उत्पाद एव सीमा शुल्क सेवा

सम्पर्क 2947, बालानन्द जी का रास्ता, चाँदपोल, पुरानी बस्ती, जयपुर (राजस्थान) 302001

पिछले आठ सात वर्षो मे राष्ट्रीय स्तर की विभिन्न पत्र पत्रिकाओ मे व्यग्य, कहानी, नाटक एव कविताओ के रूप मे सौ से अधिक रचनाओ के प्रकाशन के पश्चात यह प्रथम व्यग्य सग्रह ।